ॐ

स्वामी रामतीर्थ

भाग उन्नीसवाँ।

परमहंस स्वामी रामतीर्थ

प्रकाशक,

श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

[illegible]।

श्री

स्वामी रामतीर्थ।

उनके सदुपदेश–भाग १६।

प्रकाशक

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

लखनऊ।

प्रथम संस्करण } जनवरी १९२३
प्रति २००० } माघ १९७९

फुटकर

बिना जिल्द ॥=) } डाक व्यय रहित। { सजिल्द ॥।=)

विषय सूची ।

—:o:—

के० सी० बनर्जी के प्रबन्ध से
ऐंग्लो ओरियन्टल प्रेस लखनऊ में छपी.—१९२३

श्री राम तीर्थ ग्रन्थावली
के
रजिस्टर्ड ग्राहकों के नियम ।

१. एक वर्ष में २०×३० (डबल क्राऊन) साइज़ के १६ पेजी आकार के १६० पृष्ठ के छे खण्ड अर्थात् ९६० पृष्ठ दिये जायंगे और प्रत्येक भाग में एक फ़ोटो भी होगी ।

२. ऐसे छे खण्डों का पेशगी वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित साधारण संस्करण ३) रु० विशेष संस्करण ४॥) रु० होगा

३. ग्रन्थावली का वर्ष कार्त्तिक शुक्ल १ से आरम्भ हो कर कार्त्तिक कृष्ण १५ तक पूरा होता है । वर्षारम्भ में ही प्रथम खण्ड वी० पी० द्वारा भेजकर वार्षिक मूल्य प्राप्त किया जाता है, या ग्राहक को मनीआर्डर द्वारा भेजना होता है ।

४. वर्तमान वर्ष के मध्य या अन्त में मूल्य देने वाले को उसी वर्ष के छे खण्ड दिये जांयगे, अन्य किसी वर्ष के मास से १२ मास तक का वर्ष नहीं माना जायगा । किसी ग्राहक को थोड़े एक वर्ष के और थोड़े दूसरे वर्ष के खण्ड वार्षिक मूल्य के हिसाब से नहीं दिये जायँगे ।

५. किसी एक खण्ड के खरीदार को उस खण्ड की क़ीमत स्थायी ग्राहक होते समय उस के वार्षिक मूल्य में मुजरा नहीं की जायगी, अर्थात् वार्षिक मूल्य की पूरी रक़म एक साथ पेशगी देनेपर ही खरीदार स्थायी ग्राहक माना जायगा ।

६. एक खण्ड का फुटकर दाम साधारण संस्करण का ॥=) और विशेष संस्करण का ॥।=) होगा, डाकव्यय अतिरिक्त ।

७. पत्रव्यवहार में उत्तर के लिये टिकट या कार्ड भेजना उचित होगा, अन्यथा उत्तर की सम्भावना अवश्य नहीं । पता पूरा २ और साफ आना चाहिये, यदि हो सके तो ग्राहक नं० भी ।

मैनेजर--श्री राम तीर्थ पब्लिकेशन लीग, लखनऊ ।

श्री राम तीर्थ ग्रन्थावली।

दीपमाला सं० १९७६ से प्रकाशित हो रही है जिस के १८ भाग लगभग २५०० पृष्ठों के अब तक छप चुके हैं, और जो छः छः भागों के तीन खण्डों में विभक्त हैं। प्रत्येक खंड का दाम डाक व्यय रहित साधारण संस्करण ३) रु० और विशेष संस्करण ४॥) रु० है। प्रत्येक भाग की विषय-सूची निम्न लिखित है, पर अंग्रेज़ी लेख से जो अनुवाद हुआ है उस का नाम अंग्रेज़ी भाषा में भी दे दिया है:—

पहिला भागः—(१) आनन्द (Happiness within). (२) आत्म विकाश (Expansion of self). (३) उपासना. (४) वार्तालाप।

दूसरा भागः—(१) संक्षिप्त जीवन-चरित्र. (२) सान्त में अनन्त (The Infinite in the finite). (३) आत्म-सूर्य और माया (The Sun of Life on the wall of mind). (४) ईश्वर भक्ति. (५) व्यावहारिक वेदान्त. (६) पत्र मंजूषा. (७) माया (maya)।

तीसरा भागः—(१) राम परिचय. (२) वास्तविक आत्मा (The real Self). (३) धर्म तत्व. (४) ब्रह्म-चर्य. (५) अकबरे-दिली. (६) भारतवर्ष की वर्तमान आव-श्यकतायें (The present needs of India). (७) हिमालय (Himalaya). (८) सुमेरु दर्शन (Sumeru-scene). (९) भारतवर्ष की स्त्रियां (indian woman-hood). (१०) आर्य माता (About wife-hood). (११) पत्र मंजूषा।

चौथा भागः—(१) भूमिका (Preface by mr Purna, in Vol. I). (२) पाप; आत्मा से उसका सम्बन्ध (Sin, its relation to the Atman or real Self). (३)

पाप के पूर्व लक्षण और निदान (Prognosis & Diagnosis of Sin). (४) नक़द धर्म. (५) विश्वास या ईमान. (६) पत्र मंजूषा ।

पाँचवाँ भागः--(१) राम परिचय. (२) अवतरण (A Brief of introduction by the late Lala Amir chand, puhlished in the fourth Volume). (३) सफलता की कुंजी (Lecture on Secret of Success, delivered in japan). (४) सफलता का रहस्य (Lecture on Secret of Success, delivered in America). (५) आत्म-कृपा ।

छटा भागः--(१) प्रेरणा का स्वरूप (Nature of Inspiration). (२) सब इच्छाओं की पूर्ति का मार्ग (The way to the fulfilment of all desires). (३) कर्म (४) पुरुषार्थ और प्रारब्ध. (५) स्वतंत्रता ।

सातवाँ और आठवाँ भागः-रामवर्षा, प्रथम भाग (स्वामी राम कृत भजनों के नौ अध्याय) और दूसरा भाग (जिसके केवल तीन अध्याय दर्ज हैं) ।

नवाँ भागः-राम वर्षा का अवशिष्ट दूसरा भाग ।

दशवाँ भागः-(१) हज़रत मूसा का डंडा (The Rod of Moses.). (२) सुधार. (३) उन्नति का मार्ग या राहे-तरक्क़ी. (४) राम ढिंढोरा (The Problem of India). (५) जातीय धर्म (The National Dharma) ।

ग्यारहवाँ भागः- (१) राम के जीवन पर विचार, श्रीयुत पादरी सी, एफ, एण्ड्रयूज़ द्वारा. (२) विजयनी आध्यात्मिक शक्ति (The Spiritual power that wins). (३) लोगों को वेदान्त क्यों नहीं भाता (रिसाला अलफ़ से राम का हस्तलिखित उर्दू-लेख) ।

बारहवाँ भागः-(१) सुलह कि जंग ? गंगा तरंग।

तेरहवाँ भागः-(१) "सुलह कि जंग ? गंगा तरंग" का अवशिष्ट भाग. (२) आनन्द. (३) राम परिचय।

चौदहवाँ भागः-(१) भारत का भविष्य. (२) जीवित कौन है. (३) अद्वैत. (४) राम।

पन्द्रहवाँ भागः-(१) नित्य-जीवन का विधान (The Law of Life Eternal). (३) दुःख में ईश्वर (Out of misery to God within). (४) साधारण बात चीत (Informal Talks). (५) पत्र मंजूषा।

सोलहवाँ भागः--(१) ग़ैर मुल्कों के तजरुबे (अनुभव), (२) अपने घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं ? (How to make your homes happy ?). (३) गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव (Married life & Realization). (४) मांस-भक्षण पर वेदान्त का विचार (Vedantic idea of eating meat).

सतरहवाँ और अठारहवाँ भागः--बाल्यावस्था से ब्रह्म-लीन अवस्था तक जो २ पत्र राम से अपने पूर्व आश्रम के गुरु भगत धन्नाराम जी को तथा संन्यासाश्रम में अपने अनेक प्रेमियों को लिखे गये, उन में से लग भग ३०० चुने हुए पत्रों का संग्रह सहित भगत धन्ना राम जी की जीवनी और जल्वहे-कुहसार अर्थात् पर्वतीय दृश्य के।

निवेदन ।

आज वर्ष का पहिला अंक अर्थात् ग्रन्थावली का १६ वां भाग ग्राहकों की सेवा में भेजते हुए एक ओर से प्रसन्नता हो रही है और दूसरी ओर से कुछ दुःख । प्रसन्नता तो इस लिये कि, चाहे किञ्चित् देर चाहे सवेर, ईश्वर-कृपा से हम ग्रन्थावली को लगातार भेजनेमें पूरे सफल हो जाते हैं, और दुःख इस लिये कि जिस भाग को अपने नियमानुसार रजिस्टर्ड ग्राहकों के पास इस मास जनवरी के आरम्भ में पहुँच जाना चाहिये था उसे अपना प्रेस न होने के कारण आज मास फरवरी के आरम्भ अर्थात् एक मास के विलम्ब से पहुचाना पड़ा । यद्यपि लीग अपनी ओर से अति प्रयत्न करती रहती है कि भाग ठीक समय पर निकल कर ग्राहकों की भेंट हो, पर प्रेस में भारी कार्य होने के कारण हमारा परिश्रम वैसा सफल होने नहीं पाता जैसा कि हम अपने ग्राहकोंके लिये सफल हुआ चाहते हैं । खैर,इन त्रुटियों पर भी यदि आप राम प्यारों की अतुट सहायता और कृपा बनी रही, तो पूर्ण आशा है कि हमारा निरन्तर परिश्रम शीघ्र ही पूर्णतया सफल हो जायगा और लीग आप की सेवा अपना चित्त भर कर सकेगी ।

इस भाग से अंग्रेज़ी जिल्द दूसरी का अनुवाद शुरू हुआ है । और आशा होती है कि इस वर्ष में अंग्रेज़ी जिल्द दूसरी तथा तीसरी का हिन्दी अनुवाद समग्र प्रकाशित हो जायगा । समस्त राम प्यारों तथा ग्राहकों से सविनय प्रार्थना है कि लीग की सहायता में अपना तन,मन, धन दें और दिन प्रति दिन इसके ग्राहकोंकी संख्या बढ़ा कर लीगके कार्य-कर्ताओं का उत्साह बढ़ायें जिस से लीग अपने कर्तव्य-पालनमें सफल हो ।

मंत्री ।

मरहट्टी भाषा के पाठकों

के लिये

सुख समाचार ।

परम हंस स्वामी राम तीर्थ जी की संक्षिप्त जीवनी एक सुन्दर और मनोहर आकार में मरहट्टी भाषा में अभी प्रकाशित हुई है जिस की कापियां लीग से भी मिल सकती हैं। आकार २०×३०/१६, पृष्ठ लग भग २००, टाइप व छपाई अति सुन्दर। मूल्य २) रु०

मरहट्टी भाषा के प्रेमी इसे शीघ्र मंगाकर पढ़ने का लाभ उठायें।

श्री स्वामी रामतीर्थ।

अमेरिका—सन् १९०३

ॐ

स्वामी रामतीर्थ ।
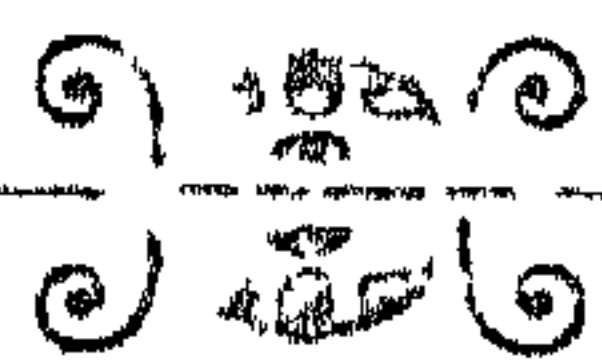
सत्य का मार्ग ।

१ मार्च १९०२ को दिया हुआ व्याख्यान ।

जैसा कि समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है, आज के व्याख्यान का विषय "सत्य का मार्ग है" पश्चिमी कानों के लिए इस शीर्षक के कुछ माने (अर्थ) हो सकते हैं, किन्तु वेदान्त की दृष्टि से यह उपाधि (शीर्षक) अशुद्ध है। 'सत्य' का रास्ता या 'सत्य' को रास्ता असंगत वाक्य है। 'सत्य' दूर नहीं है, तो फिर उसका रास्ता कैसे हो सकता है? सत्य अब भी तुम्हारे पास है, वह अब भी तुम्हारा अपना आप (आत्मा) है। तुम अब भी उस में हो; नहीं, नहीं, तुम स्वयं सत्य हो। तुम वह हो। इस तरह,

सत्य का मार्ग इन शब्दों का व्यवहार करना गलती है। तुम्हें ईश्वर-ज्ञान की प्राप्ति, आत्मदेव (ब्रह्म) का अनुभव ऐसी वस्तु नहीं है जिसे सिद्ध करना है, ऐसी चीज़ नहीं है जिसे पाना है, ऐसा काम नहीं है जिसे पूरा करना है, वह तो पूरा हुआ रही है। तुम तो अब भी वही हो। तुम्हें केवल कामनाओं के कोषों (ढकनों) को, जो तुम्हें घेरे किए हुए हैं, तोड़ कर निकल आना है, तुमने जो कुछ किया है केवल उसे तुम्हें मिटाना है। ईश्वर की प्राप्ति के लिए यदि 'करने' शब्द के विधि-अर्थात्मक अर्थ ग्रहण किये जाय, तो तुम्हें कुछ भी नहीं करना है। अपना कारागार बनाने में तुमने जो कुछ किया है सिर्फ उसे मिटा दो, और फिर तुम ईश्वर ही हो, सत्य स्वरूप ही हो। किन्तु जो कुछ किया जा चुका है उस पर हरताल फेर देने का यह काम कुछ लोगों के लिए अति कठिन कर्त्तव्य है। और इस लिए "सत्य का मार्ग" के सम्बन्ध में हम किये हुए को मिटाने की विधि पर विचार करेंगे। अपने फंदों (बन्धनों) को तोड़ने में कुछ यत्न करना पड़ेगा। ये फंदे (बन्धन), ये ज़ंजीरें और बेड़ियां जो तुम्हें बांधती हैं, क्या वस्तु हैं? तुम्हारे कान आज इस का आदर कर सकें या नहीं अमेरिका वाले और यूरोपीय लोग इस कथन की सुन्दरता को आज समझ सकें या नहीं, किन्तु इसकी सत्यता में कोई फर्क नहीं पड़ने का। सच तो यह है कि तुम्हारे सब स्नेह (आकांक्षायें), राग-द्वेष और तुम्हारी सब वासनायें, बेड़ियां और ज़ंजीरें हैं। ये तुम्हें बाँधती हैं। ये तुम्हें ईश्वरका नहीं दर्शन देतीं, ये तुम्हारा कारागार हैं। तुम्हारी कामनायें तुम्हें बाँधती हैं। तुम दो मालिकों की सेवा नहीं कर सकते। तुम एक ही समय में परमेश्वर की और धन (कुबेर देवता) की सेवा नहीं कर सकते। जब तुम शरीर के दास हो, तब

तुम विश्व के विधाता नहीं बन सकते। सत्य (तत्त्व) को प्राप्त करना अखिल विश्व का स्वामी बनना है। और कामनाओं का सत्कार करना, बंधन को, अथवा इस संसार की वस्तुओं को स्थूल पदार्थों की दास्यता और गुलामी को, मंजूर करना है। हरेक आदमी ईसामसीह होना चाहता है, हरेक मनुष्य सत्य को अनुभव करना चाहता है, सिद्ध (prophet) बनना चाहता है, किन्तु क़ीमत देने को बहुत ही थोड़े लोग तैय्यार हैं, विरला ही कोई है।

भारतवर्ष में एक बड़ा पहलवान और कसरती था। गोदना गोदवाने के लिए, अपनी भुजा पर सिंह की तस्वीर खुदवाने के लिए उसे एक नाई की ज़रूरत पड़ी। उसने नाई से अपनी दोनों भुजाओं पर एक बड़ा, तेजस्वी सिंह अंकित कर देने को कहा। उसने कहा कि मेरा जन्म सिंह राशि में हुआ था, लग्न घड़ी बड़ी अच्छी थी, और मैं बड़ा बहादुर हूँगा, ऐसा समझा जाता हूँ। नाई ने सुई ली और चित्रित करना अर्थात् गोदना शुरू किया। और उस के ज़रा सी सुई चुभाते ही कसरती उसे न सह सका। हफता हुआ वह नाई से बोला, "ठहरो, ठहरो, कर क्या रहे हो?" नाई ने कहा कि मैं शेर की दुम अंकित करने लगा हूँ। वास्तव में, यह मनुष्य सुई के चुभने की जलन नहीं सह सका और बड़ा भद्दा बहाना करके बोला, "क्या तुम यह नहीं जानते कि वज़ादार लोग अपने कुत्तों और घोड़ों की दुम कटवा डालते हैं, और इस लिए दुमकटा सिंह बड़ा बली सिंह समझा जाता है? तुम सिंह की दुम क्यों बना रहे हो? दुम की कोई ज़रूरत नहीं"। नाई ने कहा, "बहुत खूब, मैं पूँछ न अंकित करूँगा, सिंह के दूसरे अङ्ग गोदूँगा।" नाई ने फिर सुई उठाई और उसके शरीर में भोंकी इस बार भी वह

आदमी न सह सका। वह झुंझला कर बोला, "अब तुम क्या करने वाले हो ?" नाई ने कहा, "अब मैं सिंह के कान खींचने लगा हूँ।" पहलवान ने फिर कहा, "अरे नाई! तू बड़ा मूर्ख है। क्या तू यह नहीं जानता कि लोग अपने कुत्तों के कान कटवा डालते हैं ? लम्बे कानों वाले कुत्ते घरों में नहीं रखे जाते (अथवा कुत्तों के कान लम्बे नहीं रखे जाते)। क्या तू यह नहीं जानता कि बे कानों का ही सिंह सर्वोत्तम है ?" नाई रुक गया। कुछ देर बाद नाई ने सुई उठाई और फिर गोदने लगा। वह (पहलवान) उसे न सह सका और बिगड़ कर बोला, "अब तू क्या करने लगा है ऐ नाई ?" नाई ने कहा, "अब मैं सिंह की कमर गोदने लगा हूं।" तब तो पहलवान ने कहा, तुमने हम लोगों का काव्य नहीं पढ़ा है ? भारतीय कवियों का किया हुआ वर्णन तुमने नहीं पढ़ा है ? शेरों की कमर हमेशा बहुत छोटी, पतली, नाम मात्र की, चित्रित की जाती है। तुम्हें सिंह की कमर अंकित करने की ज़रूरत नहीं।" अब तो नाई ने अपने रंग और गोदने की सुई फेंक दी और गोदवानेवाले से अपने सामने से हट जाने को कहा।

यह एक मनुष्य है जो अपने को सिंह राशि में जन्मा बतलाता है, यह मनुष्य बड़ा पहलवान, बड़ा कसरती होने का दम भरता है; यह आदमी अपने को शेर कहता है। वह अपने सारे जिस्म पर सिंह गोदवाना चाहता है, किन्तु सुई की चोभ सह नहीं सकता। अधिकांश में ऐसे ही लोग हैं जो ईश्वर को देखना चाहते हैं, वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, इसी क्षण, इसी पल में, पूर्ण सत्य को जानना चाहते हैं, हरेक बात को पूरा कर डालना चाहते हैं, आधे मिनट में ईसामसीह हो जाना चाहते हैं। पर उस शेर (सत्य)

को अपने अन्तः करणों में अंकित करवा लेने का, उस सदाचार (धर्म) रूप शेर को अपनी हस्ती में चित्रित करवाने या गोदवा लेने का, जब समय आता है, तब वे डंक वा डंक की वेदना नहीं सह सकते; तब वे यों आगा-पीछा करने लगते हैं कि "वस्तु तो मैं चाहता हूँ. पर दाम न दूँगा।"

ईश्वरानुभव और सत्य को प्राप्त होने के लिए, तुम्हारी प्यारी से प्यारी कामनायें और इच्छायें आर-पार छेदी जांयगी, तुम्हें अपनी प्रियतम वासनाओं और आसक्तियों को काटना होगा, तुम्हें अपने सकल प्यारे अन्ध विश्वासों और पक्षपातों को मिटा देना होगा, तुम्हें अपनी सब पूर्व कल्पित कल्पनाओं को काट कर फेंक देना होगा। नीच और तुच्छ बनाने वाली सब आकांक्षाओं से तुम्हें अपना पिंड छुटाना होगा, तुम्हें अपने को पवित्र करना पड़ेगा। विशुद्धता, विशुद्धता। बिना दाम दिये तुम ईश्वर को नहीं पा सकते, तुम अपने जन्म जात स्वत्त्व को लाभ नहीं कर सकते। शुद्ध हृदय वाले धन्य हैं, क्योंकि उन्हें परमेश्वर के दर्शन होंगे। और हृदय की बिमलता क्या वस्तु है ? केवल वैवाहिक पापों से बचाने ही का नाम हृदय की शुद्धता नहीं है। ये तो उसके अर्थ हैं ही, किन्तु और भी बहुत कुछ उसके अर्थ हैं। आज ये वचन तुम्हें चाहे रुचें या न रुचें, किन्तु एक दिन आवेगा जब ये तुम्हें अवश्य रुचेंगे, आज या कल तुम्हें इसी नतीजे पर पहुँचना ही पड़ेगा। नतीजा यह है कि आसक्ति मात्र, वह चाहे आपको अपने घर से हो या घड़ी से, या अपने कुत्ते से हो, अथवा पिता, माता या बच्चे से, अर्थात् किसी चीज़ से भी आसक्ति, सत्य के जिज्ञासु के लिए, इसी क्षण पूर्ण सत्य पर अधिकार पाने के इच्छुक के लिए, उतना ही नीच और दुर्बल बनाने वाली है जितना

कि व्यभिचार। हृदय की शुद्धता का अर्थ है संसार के सब पदार्थों की आसक्ति से अपने को मुक्त कर लेना, त्याग; उससे इतर कुछ नहीं। ये हैं हृदय की पवित्रता के अर्थ। शुद्ध अन्तःकरण वाले धन्य हैं, क्योंकि वे ईश्वर के दर्शन करेंगे। इस पवित्रता को प्राप्त करो, और तुम्हें ईश्वर के दर्शन होंगे।

प्राचीन इतिहास में अटलांटा की बड़ी ही सुन्दर कथा है। उस में ऐसा कहा है कि जो मनुष्य उस से ब्याह करना चाहता था उसे उसके साथ दौड़ की बाज़ी लगानी पड़ती थी। कोई भी मनुष्य दौड़ में उससे आगे न निकल सका। परन्तु एक मनुष्य ने अपने देवता जूपिटर की शरण ली और दौड़ में अटलांटा से आगे निकल जाने तथा उसे पा लेने के सम्बन्ध में अपने इष्ट देव से सलाह ली। देवता ने उसे बड़ी ही विलक्षण राय दी। उसने इस मनुष्य से कहा कि दौड़ के रास्ते पर सोने की ईंटें बिछा दो। आप जानते हैं कि दौड़ में अटलांटा को जीत लेने में कोई और सहायता सुरपति जूपिटर भी अपने इस भक्त की नहीं कर सकते थे। अखिल विश्व में सब से तेज़ और ताकतदार होने का वरदान अटलांटा को सुरेश से मिल चुका था। किन्तु जूपिटर के इस भक्त ने दौड़ के पूरे चक्कर पर सोने की ईंटें डाल दीं और अटलांटा को अपने साथ दौड़ने को आह्वान किया। दोनों ने दौड़ना शुरू किया। यह मनुष्य स्वभाव से ही अटलांटा से बहुत दुर्बल था। एक क्षण में वह उससे आगे निकल गई। किन्तु जब वह मनुष्य उसकी नज़र से ओट हो गया, तब उसकी रास्ते पर पड़ी हुई दृष्टि सोने की ईंटों पर गई और उन्हें बटोरने को वह रुक गई। वह जब सोने की ईंटें बटोरने में पड़ी, तब वह भक्त उससे आगे निकल

गया। इसके एक या दो मिनट बाद उसने उसे फिर पकड़ लिया और फिर दौड़ के चक्कर की बाईं तरफ उसने दूसरी ईंट देखी। वह उस ईंट को उठाने गई और ले आई। इस बीच में जुपिटर का वह भक्त उससे आगे निकल गया। किन्तु कुछ ही देर में अटलांटा ने उसे फिर पकड़ लिया। फिर उसे कुछ और सोने की ईंटें मिलीं। वह उन्हें उठाने के लिए रुकी। इस बीच में वह आदमी फिर आगे निकल गया। यही होता रहा। दौड़ समाप्त होने तक अटलांटा के पास सोने का बड़ा भारी बोझ होगया। इस बोझ को ढोना और दौड़ में आगे निकल जाना उसके लिए बड़ा कठिन हो गया। अन्त में वह आदमी जीत गया और अटलांटा हारी। अटलांटा को मिला हुआ सब सोना भी दौड़ में जीतनेवाले आदमी के हाथ लगा। वह सोना उसे मिला। और खुद अटलांटा भी उसे मिली। उसे सब कुछ मिल गया।

धर्म के रास्ते पर और सत्य के मार्ग पर जो लोग चलना चाहते हैं उनमें से अधिकांश का यही ढंग है। सत्य के मार्ग पर जब तुम चलना शुरू करते हो,तब तुम्हें अपने इर्द-गिर्द सब प्रकार के जघन्य फल और लौकिक प्रलोभन मिलते हैं। तुम उन्हें उठाने को झुकते हो, किन्तु ज्यों ही तुम ऐसा करते हो और सांसारिक प्रलोभनों तथा सुखों को भोगते हो,त्यों ही तुम अपने को पिछड़ा हुआ पाते हो। तुम दौड़ में हारने लगते हो. टालमटोल करते हो, अपना पथ विकट बना लेते हो, और सब कुछ खो बैठते हो। सांसारिक आसक्ति (बंधन) और भौतिकता से होशियार रहो। सांसारिक सुखों को भी भोगते हुए तुम सत्य को नहीं पहुँच सकते। कहावत है कि यदि तुम सत्य का भोग करोगे, तो सांसारिक सुखों को भोगने के योग्य न रह जाओगे। सांसारिक सुखों को तुम

भोगो, तो सत्य तुम्हारी पकड़ से बच जायगा, तुम से आगे निकल जायगा। राम तुमसे आज सत्य वस्तु कह रहा है। अनेक लोग राम के पास आते हैं और बार बार उससे कहते हैं कि वे आत्मानुभव चाहते हैं। तुम इसी क्षण आत्मानुभव कर सकते हो। विषयासक्ति से अपने को मुक्त करलो और साथ ही साथ ईर्ष्या और द्वेष मात्र को झाड़ डालो। ईर्ष्या क्या है, घृणा क्या है? वे हैं औंधा अनुराग। किसी से हमारी नफरत तब ही होती है जब किसी अन्य वस्तु पर हमारी आसक्ति हो। यहां पर आप प्रश्न करेंगे कि अपने लड़कों, भाइयों, और पतियों इत्यादि से हम कैसे छुटकारा पावें। यह तो तुम्ही जानो। कैसे और किस तरीके से, यह खुद तुम्हारे जानने की बात है। किन्तु सच यह है कि सत्य या ईश्वर तुम्हारा पिता होना चाहिए, परमेश्वर या सत्य ही तुम्हारी माता, परमेश्वर या सत्य ही तुम्हारी स्त्री, ईश्वर या सत्य ही तुम्हारा अपना बाबा, अपना शिक्षक अपना घर, अपनी दौलत, अपना सब कुछ होना चाहिये। अपनी-सब आसक्तियाँ को हरेक पदार्थ से हटालो, और एक वस्तु, एक तत्व, एक सत्य स्वरूप, अपने आत्मा पर अपने को एकाग्र करो। तुरन्त ठौरही तुम्हें आत्मा-नुभव की प्राप्ति होगी।

भारतीय भाषा में एक सुन्दर गीत है, जिसे यहाँ गाने की कोई ज़रूरत नहीं। गीत का अर्थ यह है कि यदि सत्य को पाने के रास्ते में तुम्हारा पिता विघ्न कर्त्ता हो, तो उसी तरह उसे रौंद कर चले जाओ, उसे पार कर जाओ, जिस तरह प्रह्लाद ने, भारत के एक वीर बालक ने, अपने पिता को त्याग दिया था, क्योंकि वह उसके सत्यानुभव के मार्ग में कंटक बना था। यदि सत्य को अनुभव करने के मार्ग में तुम्हारी माता बाधक बनती हो, तो उसे त्याग दो। यही नई इंजील

(New Testament निउ टेस्टामेंट) कहती है । हिन्दू इंजील भी यही कहती है । अपने माता-पिताओं के कल्याण के लिए सत्य को प्यार करो । अपने माता पिताओं की वहीं तक इज्ज़त करो जहाँ तक वे सत्य की ओर तुम्हारी उन्नत्ति को नहीं रोकते । यदि तुम्हारा भाई तुम्हारे सत्यानुभव के मार्ग में खड़ा होता है, तो उसे उसी तरह दूर कर दो जिस तरह बिभीषण ने (अपने भाई रावण को) कर दिया था। यदि तुम्हारी स्त्री तुम्हारे सत्य प्राप्ति के मार्ग में विघ्न रूप है, तो उसे ठीक भर्तृहरि की तरह दूर हटा दो । यदि तुम्हारा पति तुम्हारे सत्य-अनुभव के मार्ग में रोड़ा बनता है, तो मीरांबाई की भाँति उसे तिलांजलि दे दो । यदि तुम्हारा गुरू, तुम्हारा धर्म पथ प्रदर्शक तुम्हारे सत्य-अनुभव के मार्ग में बाधा डालता है, तो उसे भीष्म की भांति झाड़ दो, परे कर दो, क्योंकि तुम्हारा असली सम्बन्धी, तुम्हारा सब से सच्चा दोस्त, सत्य और केवल सत्य है । और सब नातेदार तथा साथी क्षण स्थायी वा अस्थिर हैं, एक दिन के हैं, किन्तु सत्य सदा तुम्हारे साथ है । सत्य तुम्हारा सच्चा अपना आप (आतमा) है । सत्य तुम्हारे माता-पिताओं की अपेक्षा तुम्हारा अधिक नगीची है । तुम्हारी स्त्री, बच्चे, मित्रों, इत्यादि की अपेक्षा सत्य तुम्हारा अधिक नगीची है । बादशाहों, मात-पिताओं, बाल-बच्चों, पिता, माता, हर एक से भी सत्य का अधिक मान करो।

भारत के एक राजा के जीवन से एक बड़ा अच्छा दृष्टान्त मिलता है। वह सत्य के मार्ग का पथिक बना । कहते हैं कि बरफ में अपनी देह गला देने को वह हिमालय पर चढ़ रहा था । इसकी बड़ी लम्बी-चौड़ी कथा है । तुम्हें समग्र कथा सुनाने की राम को ज़रूरत् नहीं है । किसी

कारण से, किसी एक बड़े कारण से, वह अपने मात-पिता, अपने स्त्री और सालों, अपने चार भाइयों के साथ हिमालय की चोटियों पर जा रहा था। कहते हैं कि वह धर्म-पथ पर चल रहा था, वह सत्य के अन्वेषण के लिये जा रहा था। वह आगे चल रहा था। बढ़ता चला जाता था। उसका छोटा भाई उसके पीछे जा रहा था और उसके छोटे भाई के बाद उसका एक और भाई था, और इस तरह पर ठीक क्रम से भाइयों के पीछे इस राजा की महिषी (अर्धाङ्गी) थी। वह आगे जा रहा है, उसका मुख लक्ष्य की ओर है, और आँखें सत्य पर जमी हुई हैं। उसने देखा कि उसकी रानी उसके पीछे विलाप कर रही है। लड़खड़ाती हुई वह उसका पीछा नहीं कर सकती, वह थक गई और मरणासन्न थी। राजा ने अपना मुख उसकी ओर नहीं फेरा। उसने अपनी स्त्री से कहा कि कुछ कदम दौड़ कर मेरे पास आजाओ और फिर मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा। "मेरे पास आजाओ मुझ तक आजाओ"। किन्तु तीन पग बढ़कर वह उसके पास न पहुँच सकी। वह बहुत पीछे रह गई थी, वह उसके पास न पहुँच सकी, और राजा पीछे नहीं लौटा। सत्य से एक पग भी लौटने की अनुमति नहीं होना चाहिये। सम्राट युधिष्ठिर कदापि एक पग भी पीछे न लौटेंगे। स्त्री लड़खड़ा कर गिर जाती है, किन्तु उसके लिए सम्राट सत्य की ओर से मुँह नहीं फेर सकता। तुम्हारे पूर्व जन्मों में तुम्हारी हजारों स्त्रियां हो चुकी हैं, और यदि तुम्हारे कुछ भावी जन्म हैं, तो न जाने फिर कितनी बार तुम्हारा विवाह होगा; न जाने कितने तुम्हारे नातेदार हो चुके हैं और भविष्य में कौन जाने कितने सम्बन्धी होंगे। इन सम्बन्धियों और बन्धनों के लिए तुम्हें सत्य से मुंह न फेरना चाहिये।

आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, कोई चीज़ तुम्हें लौटाने न पावे। अपनी स्त्री की अपेक्षा सत्य का अधिक आदर करो। भगवन् का अधिक सम्मान करो। सत्य का सम्पूर्ण मानव-जाति से सम्बंध है, आत्मदेव या सत्य समग्र काल (time) से सम्बन्ध रखता है, नित्य है। और तुम्हारे सांसारिक बन्धन ऐसे नहीं हैं, वे क्षणिक हैं। इस कानून को ध्यान में रक्खो कि, जो कुछ वास्तव में तुम्हारे लिये हितकर है, वह तुम्हारी स्त्री और तुम्हारे साथियों का भी अवश्य हितकर है। यदि तुम्हें समझ पड़े कि अपनी स्त्री से अलग रहने में वास्तव में हमारी भलाई है, तो याद रक्खो कि तुमसे अलग रहना उसके लिये भी वास्तव में हितकर है। यह नियम है। जो सत्य या परमेश्वर तुम्हारे व्यक्तित्व या अस्तित्व के मूल में है, वही तुम्हारी स्त्री के भी व्यक्तित्व का मूलाधार है। सम्राट युधिष्ठिर की रानी गिर पड़ी। किन्तु राजा सीधा चला गया और अपने भाइयों से पीछे चले आने को कहा। कुछ देर तक वे उसके साथ दौड़े, किन्तु अब तो सब से छोटा भाई उसके साथ चलने में असमर्थ हो गया। थकावट के मारे वह लड़खड़ाने लगा और जब गिरने को हुआ, तब चिल्लाया, "भाई! भाई युधिष्ठिर! मैं मरता हूँ, मुझे बचाओ, मुझे।" राजा युधिष्ठिर ने लक्ष्य से, सत्य से अपनी आँखें नहीं मुड़ाईं; वह बढ़ता गया, आगे बढ़ता गया। उसने अपने भाई से केवल पुकार कर कहा कि "दो या तीन पग दौड़ कर मेरे पास पहुँच जाने की हिम्मत करो, और इस शर्त पर मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूँगा; परन्तु किसी भी कारण से, किसी लिये भी तुम्हें धकेलने को मैं एक पग भी पीछे न लौटूंगा"। वह आगे बढ़ता जा रहा है। सब से छोटा भाई मर गया। कुछ देर बाद दूसरा भाई चिल्लाया, जो रस्सी के उस सिरे

पर था, और वह भी लड़खड़ाने वाला ही था। उसने सहायता के लिये पुकारा, "भाई! भैया युधिष्ठिर! मेरी सहायता करो, मेरी मदद करो, मैं गिरा चहता हूँ"। किन्तु भाई युधिष्ठिर पीछे नहीं लौटता। वह बढ़ा चला जाता है। इस तरह सब भाई मृत्यु को प्राप्त हुए, किन्तु महाराज युधिष्ठिर टस स मस न हुआ, या एक पग भी नहीं लौटा। वह चला ही जाता है, धर्म के मार्ग पर वह बढ़ता ही जाता है। आगे चलकर कहानी यों है कि जब युधिष्ठिर सत्य की सर्वोच्च चोटी पर पहुँच गया, जब वह अभीष्ठ स्थान पर पहुँच गया, तब स्वयं परमात्मदेव मूर्तिमान सत्य, उसके सामने आविर्भूत हुआ। जैसा कि हमें इंजील में पढ़ने को मिलता है कि परमेश्वर कपोत (dove) के रूप में दिखाई पड़ा, उसी तरह हिन्दू धर्म-शास्त्रों में किन्हीं व्यक्तियों को देवदूत या वैकुण्ठ पति (इन्द्र) के रूप से ईश्वर के दर्शन देने की बात हमारे पढ़ने में आती है। इस तरह आगे कथा में वर्णित है कि जब महाराज युधिष्ठिर सत्य के शिखर पर पहुँच गया, तब मूर्तिमान सत्य ने प्रगट होकर उससे सशरीर वैकुण्ठ चलने को, स्वर्गारोहण करने को कहा। जिस तरह आप इंजील में किन्हीं लोगों का जीते जी स्वर्गारोहण पढ़ते हैं, उसी तरह महाराजा युधिष्ठिर से जीते जी स्वर्गारोहण करने की प्रार्थना होने की यह कथा है। अपनी दाहिनी ओर देखने पर उसे एक कुत्ता अपने पास दिखाई दिया। राजराजेश्वर युधिष्ठिर ने कहा, "ऐ परमात्मदेव! ऐ सत्य! यदि तुम मुझे उच्चतम वैकुण्ठ को ले चलना चाहते हो, तो इस कुत्ते को भी मेरे साथ आपको ले चलना पड़ेगा। इस कुत्ते को भी मेरे साथ श्रेष्ठ स्वर्ग को चढ़ा ले चलिये।" किन्तु कहानी कहती है कि देहधारी परमेश्वर या सत्य ने कहा, "महाराज युधिष्ठिर! ऐसा नहीं

हो सकता। कुत्ता इस काबिल नहीं है कि सर्व श्रेष्ठ स्वर्ग को पहुँचाया जाय, कुत्ते को अभी अनेक योनियों में जन्म लेना है, कुत्ते को अभी मनुष्य की योनि में जन्म लेना है और उत्तम जीवन व्यतीत करना है; उसे पवित्र और शुद्ध मनुष्य की तरह अभी रहना है, और तब वह परम स्वर्ग को चढ़ाया जायगा। तुम सदेह सर्व श्रेष्ठ स्वर्ग में जाने के योग्य हो, किन्तु कुत्ता नहीं है। तब तो महाराज युधिष्ठिर बोले, 'ऐ सत्य! ए परमेश्वर! मैं यहाँ तुम्हारे लिये आया हूं, न कि स्वर्ग या वैकुण्ठ के लिये। यदि आप मुझे सर्व श्रेष्ठ वैकुण्ठ को लेजाना और वहाँ सिंहासन पर बैठाना चाहते हैं, तो आप को इस कुत्ते को भी मेरे साथ लेचलना पड़ेगा। मेरी स्त्री मेरे साथ न आसकी, वह धर्म के मार्ग पर डगमगा गई। मेरा सब से छोटा भाई मेरे साथ न चल सका, वह सत्य के मार्ग पर कांपता गया; मेरे साथ दूसरे भाई मेरा साथ न देसके, उन्हों ने मुझे छोड़ दिया, उन्हों ने अपने को दुर्बलता के हवाले कर दिया, उन्हों ने प्रलोभनों को अपने पर विजय पाने दी, वे मेरे साथ नहीं चल सके। किन्तु अकेला यह कुत्ता मेरे साथ आया है। यह कुत्ता है। इसने दुःख-दर्द में मेरा साथ दिया है, यह प्रयत्नों में मेरा साझी हुआ है, मेरे संग्रामों में इसने हिस्सा लिया है, मेरी चिन्ताओं में भाग बँटाया है, मेरे साथ इसने परिश्रम किया है यह कुत्ता है जब इस कुत्ते ने मेरी मुश्किलों में, मेरे कठिन कष्टों में और झंझटों में, मेरा साथ दिया है, तब मेरा बैकुंठ या स्वर्ग वह क्यों न भोगेगा? मैं तुम्हारे स्वर्ग या वैकुंठ को कदापि न जाऊँगा यदि तुम इस कुत्ते को उस वैकुंठ या स्वर्ग का मेरा सांझादार न बनाओगे। यदि इस कुत्ते को तुम मेरे साथ नहीं आने देते, तो मुझे तुम्हारे वैकुंठ की ज़रूरत नहीं है।

कथा बताती है कि देहधारी सत्य या ईश्वर ने एक बार फिर महाराज युधिष्ठिर से कहा, "कृपा करके यह अनुग्रह मुझ से न चाहो, अपने साथ इस कुत्ते को ले चलने को मुझ से न कहो"। किन्तु महाराज युधिष्ठिर ने कहा, "दूर हो तू छल; तुम देहधारी सत्य या परमेश्वर नहीं हो, तुम कोई शैतान हो, तुम परमेश्वर या सत्य नहीं क्योंकि यदि तुम सत्य होते तो अपने सामने कोई अन्याय क्यों होने देते? क्या तुम्हारे ध्यान में यह नहीं आता कि, यदि केवल मुझे स्वर्ग का भोग देते हो और इस कुत्ते को मेरे सुख का साझीदार नहीं बनने देते तो तुम इस कुत्ते के साथ, जिसने मेरे कष्टों को बँटाया, अन्याय करते हो? यह अनीति देहधारी सत्य या परमेश्वर के अनुरूप नहीं है" कथा बताती है कि इस पर, देहधारी सत्य या परमेश्वर अपने सच्चे रूप में प्रकट हुआ, और वह कुत्ता तुरन्त ही फिर कुत्ता न रहा बल्कि स्वयं सर्व शक्तिमान महाप्रभु के पूर्ण तेज से युक्त दिखाई पड़ा। उस राजा की परख और परीक्षा हो रही थी, और अन्तिम परीक्षा में, अन्तिम क्षण में, वह सफल हुआ।

इस तरह पर तुम्हें सत्य के पथ पर चलना है। यदि तुम्हारे अति नगीची और प्रियतम साथी भी, जो तुम्हारे कुटुम्बी हैं, धर्म के रास्ते पर तुम्हारे साथ न चल सकें, तो उन को अपने मित्र न समझो। और यदि एक कुत्ता सदाचार के पथ में तुम्हारा साथ दे, तो उस कुत्ते को तुम्हें अति नगीची और प्रियतम प्राणी समझना होगा। इस तरह तुम्हारे धर्माचरण का पक्ष लेने के सिद्धान्त पर तुम्हें अपने मित्र बनाने चाहिये। किसी ऐसे को अपना मित्र न बनाओ जो तुम्हारी दुष्प्रकृति का पक्ष पाती हो। यदि इस सिद्धान्त पर तुम अपने मित्र चुनोगे कि उनमें भी वही कुप्रवृत्तियां हैं जो

तुममें हैं, तो पीड़ा, चिन्ता और बिकट वेदना तुम्हें भोगना पड़ेगी।

एक हिन्दू महात्मा के सम्बन्ध में कहते हैं कि एक बार वह भूखा सड़कों पर जा रहा था। आप जानते हैं कि हिन्दुस्थान में महात्मा लोग जब भूखे होते हैं, तब पहाड़ों से उतर कर रास्तों पर विचरते हैं और शरीर रक्षा निमित्त भोजन मांगते हैं। अति विरल अवसरों पर ही वे सड़कों पर आते हैं। आम तौर पर वे नगरों से बाहर वनों में रहते हुए ईश्वर के ध्यान में अपना सब समय बिताते हैं। भूखे महात्मा जी को भोजन कराया गया। यदि राम भी कुछ लेता है, तो उसे क्षमा करने के लिये आप के पास उचित कारण होगा। एक महिला उसके खाने के लिये उत्तम भोजन लाई। उसने रोटी लेकर अपने रुमाल में रखली, और भारतीय साधुओं के दस्तूर के अनुसार घर से निकल कर जंगल की राह ली। वहाँ उसने रोटी पानी में डाल दी और भिगो कर खा ली। दूसरे दिन फिर मामूली समय पर वह नगर में आया। फिर वह महिला उसके पास गई और कोई बहुत ही उत्तम भोजन खाने को दिया। वह लौट गया। तीसरे दिन भी नारी कोई अति उत्तम आहार लाई और साधु को वह अत्युत्तम आहार देते समय उसने कहा,—"मैं तुम्हारी राह देखा करती हूँ। तुम्हारी राह देखते देखते, दरवाज़े की ओर ताकते ताकते, मेरी आँखें दुःखने लगी हैं। तुम्हारे नेत्रोंने मुझे मोह लिया है।" उस महिला के मुखसे ये वचन निकले। साधु चला गया। वह किसी दूसरे दरवाज़े पर गया और वहाँ उसे कुछ भोजन मिला। उस भोजन को खा कर वह वन को चला गया। और उस पहली महिला के दिये हुए भोजन को जिस ने उस पर अपने प्रेम भाव की सूचना दी थी, उसने नदी में

फेंक दिया। और दूसरी महिला के भेंट किये हुए भोजन को उसने खाया। क्या आप जानते हैं कि दूसरे दिन उसने क्या किया! लोहे के सूजे को खूब तपा कर उसने अपनी आंखें छेद कर निकाल लीं, और उनको अपने अंगोछे में बांध कर एक लकड़ी के सहारे बड़ी कठिनता से रास्ता टटोलते टटोलते वह उस माहिला के घर पर पहुंचा जिसने उससे प्रेम प्रकट किया था। उसने माहिला को बड़ी उत्सुकता से अपनी राह देखते पाया। उस साधु के नयन ज़मीन पर गड़े हुए थे। महिला ने यह नहीं ध्यान किया कि साधु ने अपनी आँखें छेद कर बाहर निकाल ली हैं। और जब वह कोई अति स्वादिष्ट पदार्थ उसके खाने के लिये लाई, तब अपने नेत्र-गोलक उसे भेंट करते हुए वह (साधु) बोला, "माता! माता! इन नयनों को ले लीजिये, क्योंकि इन्होंने तुम्हें मोहित किया था और तुम्हें बड़ा कष्ट दिया था। इन नेत्रों को अपने क़बज़े में रखने का तुम्हें पूरा अधिकार है। मां! तुम्हें इन नयनों की चाह थी। इन्हें लो, अपने पास रक्खो इनको, इन्हें प्यार करो और इनका सुख भोगो, इन नेत्र-गोलकों को तुम जो चाहो करो, किन्तु ईश्वर के लिये, दया करके, मेरी अग्रसर गति (आध्यात्मिक उन्नति) को न रोको। सत्य के मार्ग में मेरे ठोकर खाकर गिरने की व्यवस्था न करो"।

अरे भाइयो! अब हम देख सकते हैं कि, यदि तुम्हारी आँखें तुम्हारी राह में रोड़ा हैं, तो उन्हें निकाल कर फेंक दो। तुम्हारी सारी हस्ती अंधेरे में तबाह हो जाने से यह अच्छा है कि तुम्हारी देह बिना प्रकाश के हो। यही रास्ता है।

यदि तुम्हारे नेत्र तुम्हारे सत्यानुभव के मार्ग में रोड़े हैं, तो उन्हें छेद कर निकाल डालो। यदि तुम्हारे कान तुम्हें फुसलाते और पीछे रखते हैं, तो उन्हें काट डालो। यदि

तुम्हारी स्त्री, रुपया, दौलत, सम्पत्ति, या कोई भी चीज़ रास्ते (सन्मार्ग) में विघ्न करती है, तो उसे दूर करदो। यदि सत्य को तुम उतना ही प्यार कर सको जितना कि अपनी घरवाली और नातेदारों को प्यार करते हो, यदि तुम परमेश्वर या आत्मा या आत्मानुभव को उतने ही जोश या रुचि के साथ प्यार करसको जितने जोश और उत्साह से अपनी बीबी को प्यार करते हो, अपनी स्त्री पर जितना प्रेम दिखाते हो यदि उसके आधे से भी तुम परमेश्वर को प्यार कर सको तो इसी क्षण (समय) तुम्हें सत्य की प्राप्ति होजाय। जब तुम धर्मपन्थ पर चलना शुरू करते हो और प्रारम्भ में मिलने वाले कुछ प्रलोभनों पर विजय प्राप्त करते हो तब तुम्हें परमेश्वर का अनुभव होता है। साधारण प्रलोभनों पर विजय पाने पर तुम्हें क्या मालूम होगा। तब तुम्हें यह रास्ता निरा ऊटपटांग और सुन्दरता-रहित न जान पड़ेगा, तब तुम्हें यह सारा रास्ता विषम (बीहड़) न प्रतीत होगा। कहा जाता है कि सत्य का मार्ग सुई के सिरे (नाके) से भी अधिक तंग है। वेदों में लिखा हुआ है कि सत्य का पंथ क्षुर की धार के समान पैना और संकीर्ण है। किन्तु यह पूरा सत्य नहीं है। प्रारम्भ में पंथ बहुत पैना और संकीर्ण जान पड़ता है किन्तु जब आप साधारण प्रलोभनों को जीत लेंगे तब अत्यन्त सुन्दर और सुगम रास्ता आपको मिलेगा। आप सम्पूर्ण प्रकृति को अपनी सहायता करते और हरेक वस्तु को अपना पक्ष लेते पावेंगे। ये कठिनाइयां, ये प्रलोभन, ये रुकावटें, ये भयत्न और विरोध केवल आपको धमकाते है। वे आपको डराते और दबकाते हैं। किन्तु वास्तव में हानि नहीं पहुंचाते। यदि तुम उन की आंखें नीची कर सको और उन्हें भयभीत कर सको तो तुम्हें मालूम होगा कि कठिनाइयां केवल देखने

मात्र को कठिनाइयां मालूम पड़ती थीं, कठिनाइयां और प्रलोभन केवल मालूम पड़ने भरकी कठिनाइयां और प्रलोभन थे। आप सम्पूर्ण प्रकृति को अपनी ओर खड़ा हुआ पावेंगे, समग्र सृष्टि को अपनी टहल करने को तैयार पावेंगे। आप को यह पता लग जायगा।

एक हिंदू धर्म पुस्तक में जो भारत की इलियड (प्रसिद्ध कविता) है और जिसमें संसार के अथवा अन्ततः भारत के सर्व श्रेष्ठ शूरवीर राम की कथा वर्णित है, कहा हुआ है कि जब वे (राम) सत्य को खोजने गये, सत्य के पुनर्लाभ या अनुसन्धान के लिये गये, तब सम्पूर्ण प्रकृति ने अपनी सेवा उनके अर्पण की। कहा जाता है कि बन्दर उनके सैनिक बने और गिलहरियों ने खाड़ीपर पुल बनाने में उनकी सहायता की। कहा गया है कि जटायू (हंसों) ने भी उनका पक्ष लेकर शत्रु पर विजय पाने में उनकी सहायता की। कहते है कि पत्थर अपने स्वभाव को भूल गये पानी में फेंके जाने पर डूबने के बदले पत्थरों ने कहा "हम उतराते या पानी पर तैरते रहेंगे ताकि सत्य के पक्षकी जय हो"। उसमें यह कहा गया है कि, वायु और आकाश उनके पक्ष में थे, अग्नि उन्हें थांभे रही, पवनों और तूफानों ने उनका साथ दिया। अंग्रेज़ी भाषा में एक कहावत है कि वायु और लहर सदा वीर की अनुकूलता करती हैं। समग्र प्रकृति आपका पक्ष लेती है, जब आप प्रयत्न में लगे ही रहते हैं, जब आप शुरू की दिखावे की कठिनताओं को जीत लेते हैं। शुरू के प्रलोभनों और झगड़ों को यदि आप जीत लें तो समग्र प्रकृति को आप की चेरी बनना पड़ेगा। सत्य पर डटे रहने का आग्रह करो तब तुम्हें विदित होगा कि तुम किसी साधारण लोक में नहीं रहते हो। दुनियां तुम्हारे लिये अद्भुत चमत्कारों की दुनिया

बन जायगी, चारों ओर तुम्हारे अलौकिक घटनायें घटेंगी और धिक् (लानत) दें देवताओं को यदि वे तुम्हारी अग्रसर गति (अध्यात्मिक उन्नति) में तुम्हारी खिदमत न करें। प्रकृति उत्सुकता के साथ विश्व के शासक की मुसाहबी कर रही है। आप अखिल विश्वके स्वामी हैं, यदि सत्य के साथ आप डटे हुए हैं तो समग्र संसार के आप अधिपति हैं।

संसार के, राम के विचार से अत्यन्त महापुरुष की, एक भारतीय महात्मा की, जीवनी वर्णन करके राम अब समाप्त करेगा। उसका नाम है शम्सतबेरज़। विचित्र परिस्थिति में इस मनुष्य का जन्म हुआ था। कहानी सच है या झूठी, इससे हमें कोई मतलब नहीं। किन्तु कुछ न कुछ सत्य उस में अवश्य होगा। उसके पिता के सम्बन्ध में कहा गया है कि एक समय वह देश में महा निर्धन मनुष्य था। उस महादीन व्यक्ति ने अपनी ज़िन्दगी पूरी तरह से ईश्वर ध्यान में बिताई। वह भूल गया कि उसका शरीर कभी जन्मा था, वह बिलकुल भूल गया कि उसकी देह कभी भी इस लोक में थी। उसके लिये दुनिया कभी दुनिया थी ही नहीं। वह परमेश्वर था, पूर्ण ब्रह्म था। और जिस तरह कभी २ किसी व्यक्ति की सारी देह किसी एक ख़्याल से परिपूर्ण हो (पग) जाती है उसी तरह नख से शिखा तक उसकी देहका प्रत्येक रोमकूप (every pore of his body) ब्रह्मज्ञान से पूर्ण (सचेतन) था। बयान किया गया है कि जब वह सड़कों पर चलता था तब लोग उसके शरीर के रोमकूपों (pores) से यह गीत सुनते थे, "हक़, अनलहक़," जिसका अर्थ है "ईश्वर, मैं ईश्वर हूं"। उसकी जीभ पर सदा यह गीत रहता था, "अनलहक़, अनलहक़, ब्रह्म मैं हूं, ब्रह्म मैं हूँ"। साधारण लोग उसके आस-पास जमा हो गये,

उन्होंने उसे मार डालना चाहा। उन्हों ने उस पर धर्मद्रोह (कुफ़्र) का अभियोग लगाया। वह अपने को ईश्वर क्यों कहता है? वह स्वयं परमेश्वर था; उसके लिये देह देह नहीं थी, न दुनिया दुनिया थी। "अनलहक़" शब्द जब उसके मुख से निकलते थे तब उसे उनका भी ध्यान नहीं होता था। जिस तरह सोया हुआ मनुष्य घर्राटे लेता है उसी तरह अपने हिसाब से वह बिलकुल परमेश्वर में डूबा हुआ था। और यदि "अनलहक़" शब्द उसके मुख से निकलते थे तो वे सोये हुए मनुष्य के घर्राटों के तुल्य थे। किन्तु लोगों ने उसे मार डालना चाहा पर उसके लिये यह क्या था, किसे तुम मारोगे? तुम तो शरीर का बध करोगे, किन्तु उसकी अपनी दृष्टि से तो उस शरीर का कभी अस्तित्व था ही नहीं। उसके शरीर को मार डालो, किन्तु उसको इससे कौन पीड़ा हो सकती थी? कहा गया है कि उसका शरीर सूली पर चढ़ाया गया। आप जानते हैं कि सलीब पर देह को रखना एक सहज बात है, किन्तु वहां सलीब से भी एक बदतर चीज़ थी। यह एक लोहे की लम्बी, (सिर की तरफ) नोकदार चोब थी, सुई की सी नोकदार चोब थी। और इस मनुष्य का हृदय लोहे की बल्ली के ठीक सिर पर रख दिया गया। लोहे की चोब के पैने नुकीले सिर को उसकी सौर मर्मग्रंथि (Solar plexus) को छेदकर पार निकल जाना था। इस तरह पर मनुष्य उन दिनों मारा जाता था। आप समझ सकते हैं कि यह सलीब से भी खराब ढंग है। उसकी देह इस तरह की सूली पर रक्खी गई। और बयान किया गया है कि जब उसकी देह उस सूली पर रक्खी हुई थी उसका चेहरा तेज से दमक रहा था, तथा उसके शरीर के प्रत्येक रोम से वही मधुर

गीत निरन्तर निकल रहा था, "अनलहक़, मैं ईश्वर हूँ, मैं ईश्वर हूँ, परब्रह्म मैं हूँ, परब्रह्म मैं हूँ"। शरीर मृत्यु को प्राप्त होता है, किन्तु उसके लिये इससे कोई अन्तर नहीं पड़ा। इस कथा में आप देखते हैं कि, यदि सत्य के लिये आपको अपनी देह दे देना पड़े तो देदीजिये। यह अन्तिम आसक्ति (बन्धन) तोड़ी गई। सत्य के लिये, सांसारिक आसक्तियों (अनुरागों) को दे देने की तो बात ही क्या है, सत्य के लिये आप को केवल सांसारिक आसक्तियों (अनुरागों) को ही न छिन्न करना पड़ेगा, किन्तु यदि शरीर देने की ज़रूरत पड़े, तो उसे भी दे दीजिये। इस तरह पर आप को सत्य के पथ पर चलना है। जब यह मनुष्य उस नुकीले चोब पर लटक रहा था तब खून के बूँद उसकी देह से टपके। और कहानी बताती है कि लोहू के उन क़तरों को एक युवती ने बटोर लिया। यह जवान लड़की, जो उस साधु का सा ही विश्वास रखती थी, यह नौ जवान लड़की जिसके विचार वही थे जो प्रचारक के थे, इस जमा किये हुए रक्त को पी गई। और कहा जाता है कि उसके गर्भ रह गया। यह बात सच हो या झूठ, इससे हमारा कुछ मतलब नहीं है। यदि ईसामसीह निष्पाप गर्भ की पैदाइश हो सकता है तो, वेदान्त के अनुसार, यह बात भी सत्य हो सकती है क्यों कि यह एक ऐसा मनुष्य था जो ईसामसीह से कम नहीं था, यथार्थ में अनेक बातों में उससे बढ़ा हुआ था। इस स्त्री से एक लड़का उत्पन्न हुआ जो साधु हुआ, जिस की जीवनी राम आप को सुनाना चाहता है। अपने प्रारम्भ से ही, अपने बचपन से ही वह पूर्ण परमेश्वर था, अपने बाप से भी कहीं बढ़ चढ़ कर था। आप विश्वास करें, उस की जुबान से निकली हुई एक अति अपूर्व पुस्तक, बहुत

बड़ा ग्रंथ है। इस महापुरुष ने कभी क़लम उठाकर उसे नहीं लिखा। किन्तु कहा जाता है कि उसके मुख से सदा कविता ही निकलती थी, वह जो कुछ भी बोलता था काव्य ही होता था। किन्तु किस तरह का काव्य? तुम्हारे अमेरिकन कवियों का अधम काव्य नहीं। यह यथार्थ में वास्तविक काव्य होता था। ब्रह्म-ज्ञान के सिवाय और कुछ भी इसमें नहीं होता था। ईश्वरी-कल्पनाओं से अलंकृत यह अति उत्कृष्ट काव्य होता था। इसका प्रत्येक शब्द सोने से तौले जाने के योग्य है, यदि उसकी तौल की जा सकती है, तो।

इस मनुष्य के सम्बन्ध में एक बड़ी ही विचित्र बात कही जाती है। एक बार तमाशा करने वाले लोगों की एक मंडली आई, आप सरकस या किसी दूसरी तरह का तमाशा कह सकते हैं। बादशाह को उन्हों ने तमाशा दिखाया। बादशाह उन से बहुत खुश हुआ और एक हज़ार रुपए इनाम दिया। बाद को बादशाह को बड़ा पश्चाताप हुआ। निस्सार तमाशों आदि के लिये हर रात हज़ारों रुपये दे डालना महाराज ने उचित नहीं समझा। अपने हज़ार रुपये फेर लेने के लिये उसने एक चाल चली। उसने तमाशे वाले से सिंह का वेष धरने को कहा और कहा कि यदि शेर का खेल पसन्द आ जायगा तो तुम्हें बहुत कुछ कोई बड़ी भारी चीज़ दी जायगी, नहीं तो तुम्हारी सब सम्पति जुर्माने में लेली जायगी। ये लोग शेर का तमाशा न कर सके, वे शेर का रूप या वेष बना कर बादशाह को खुश न कर पाये। देखिये हिन्दुस्थान में ऐसे लोग हैं जो सब तरह के रूप बनाते हैं और कुछ जानवरों के रूप में भी प्रगट होते हैं और जिन जानवरों का वेष धरते हैं उन्हीं का प्रातिरूप सब तरह पर हो जाते हैं। किन्तु शेर का रूप वे न धर सके। ये लोग इस साधु पुरुष के पास आये

और रोने धोने तथा आंसू बहाने लगे। कथा कहती है कि, सम्पूर्ण सृष्टि से तदाकारता, समग्र प्रकृति से एकता और प्रत्येक से अभेदता होने के कारण स्वभाविक सहानुभूति ने इस महापुरुष के हृदय को दबा लिया और सहसा उसने उन लोगों से कहा कि तुम खुश हो, मैं सिंह का वेष धारण करूंगा, मैं स्वयं शेर का खेल दिखाऊंगा। आगे कथा यों है कि दूसरे दिन जब बादशाह और उसके दरबारी सब के सब इस प्रत्याशा में खड़े हुए थे कि तमाशा करनेवाली मंडली का कोई आदमी सिंह की आकृति और रूप बना कर आवेगा, तब एका एक, मानों जादू के ज़ोर से, एक सच्चा शेर आंगन में कूद पड़ा। यह सिंह तुरन्त गरजने लगा। इस ने बादशाह के बच्चे को झपट लिया और टुकड़े टुकड़े चीर डाला। उसने एक दूसरे लड़के को उठा लिया और उसे आकाश में उछाल दिया। आप देखते हैं कि यह एक मनुष्य था जो वास्तव में पर ब्रह्म और परमात्मा था। इस व्यक्ति के लिये "मैं यह छोटा नन्हा शरीर हूं" की कल्पना अतीत काल की बात हो चुकी थी अर्थात् बिलकुल निरर्थक होचुकी थी। वह स्वयं परब्रह्म था, और वह वही परमेश्वर था जो सिंह के रूप में प्रकट हुआ और एक क्षण के बिचार में वह शेर बनगया। (जैसा तुम सोचते हो वैसे ही तुम हो जाते हो और यदि तुमने अपने आत्म स्वरूप को परमात्मा समझा और अनुभव किया है, तो आप के सब विचार और मनोरथ अवश्य सफल होंगे, वहीं ही पूरे होंगे इस लिये इस पुरुष का विचार कि मैं सिंह बन सकता हूँ तुरन्त सफल हुआ, और वह सिंह होगया। तमाशा समाप्त हुआ। लड़के को मार डालने के बाद महात्मा चला गया, क्यों कि उसे सिंह होना और इस देह या उस देह का आदर करना नहीं था। वह

व्यक्तियों को मानने वाला नहीं था अर्थात् देहों में आसक्त नहीं था। बादशाह जामे के बाहर होगया। बादशाह दरबारी महाकोप की मूर्ति होगये। उन्होंने इस पुरुष से बदला लेना चाहा। वे उसके पास गये और बोले, "अजी महाराज! अजी महाराज!! कृपा करके इस लड़के को फिर जिला दीजिये। यदि आप उसे मार सकते हैं, तो जिला भी सकते हैं। उसे जिला दीजिये, जिस तरह ईसा "कुम बिस्मिल्लाह" कहकर मुर्दों को जिलाया करता था जिस 'कुमबिस्मिल्लाह' का अर्थ है—"ईश्वर के नाम से उठ खड़ा हो, ईश्वर की महिमा बखानो और चलो जी उठो, पुनर्जीवित हो"। उन्हों ने उससे उस लड़के को ईश्वर के नाम से फिर जिला देने को कहा। महात्मा हँसे और बोले, "ईश्वर के नाम से फिर जी जाओ", किन्तु लड़का चैतन्य न हुआ। महात्मा ने कहा कि "लड़का ईश्वर के नाम से सजीव नहीं होता है"। उसने फिर कहा, "ईश्वर के लिये जी जाओ"। अब भी लड़का न जिया। महात्मा ने तीसरी बार फिर कहा, "जी जाओ और प्रभु के नाम से उठो और चलो"। किन्तु जीवित न हुआ। महात्मा मुस्कुराया और बोला, "कुम-बेज़्ज़नी", "मेरी आज्ञा से जी जाओ, मेरे आदेश से जी उठो"। अब तो लड़का जी उठा। "कुम बेज़्ज़नी", यह सत्य है, "मेरे आदेश से जी उठो" और लड़का बिलकुल दुरुस्त अर्थात् सजीव हो गया। लड़का जी उठा, किन्तु उसके आस पास के लोग यह न सह सके। उन्हों ने कहा, "यह धर्मद्रोही (काफ़िर) मनुष्य है। यह सम्पूर्ण कीर्ति खुद लेना चाहता है वह अपने को ईश्वर के बराबर बनाना चाहता है। उसे मार डालना चाहिये, उसका बध हो जाना चाहिये, जीते जी उसकी खाल उतार लेनी चाहिये"। महात्मा के लिये ये बातें

अर्थ रहित थीं। लोग उसे नहीं समझे थे। वह देह को, क्षुद्र व्यक्तित्व को, परमेश्वर नहीं कह रहा है। वह तो अपने मांस को इसके पहले ही मार और सूली पर चढ़ा चुका था। लोग जीते जी उसकी खाल उतार लेना चाहते थे, और कहानी आगे यों कहती है कि उस (महात्मा) ने तुरन्त अपने नखों से अपना सिर बिदारना शुरू किया और जिस तरह जानवरों की खाल उतार कर देह से अलग करदी जाती है, उसी तरह अपने ही नखों से महात्मा ने अपनी खाल उतार डाली और काटकर फेंक दी। इसी अवसर की रची हुई उसकी एक उत्कृष्ट और बड़ी कविता है। उस गीत (कविता) का मर्म यह है, "ऐ आत्मा! ए मेरे अपने आप!" वह अपने को सम्बोधन कर रहा है,' जिसके लिये संसार का विष अमृत है और ऐ आत्मा! (मेरे अपने आप!) जिसके लिये संसार का अमृत (अर्थात्, इन्द्रियों के भोग) विष है, यहां ये लोग कुछ मांगते हैं। संसार मुर्दा लाश (यहाँ पर मुर्दा लाश का अर्थ "इन्द्रियों के भोग" है) के सिवाय और कुछ नहीं है, दुनिया के सुख केवल निर्जीव शव हैं और कुछ भी नहीं, और उनके पीछे दौड़ने वाले लोग कुत्तों से किसी तरह बेहतर नहीं। यहां ये कुत्ते आये हैं। यह मांस इन्हें खाने को देदो," कहानी चाहे सच्ची हो या झूठी, राम को इससे कोई प्रयोजन नहीं। किन्तु कहानी का तत्त्व, कहानी की शिक्षा, तुम्हें मन में रखना चाहिये।

सत्य की प्राप्ति के लिये, धर्म के रास्ते पर चलने के लिये, सारे अनुराग (मोह) को त्याग दो, सांसारिक कामनाओं और स्वार्थ पूर्ण लगनों (आसक्तियों) से ऊपर उठो। यदि लौकिक आसक्तियों और स्वार्थ भरी इच्छाओं से आप अपने को छुटा लें तो फिर सत्य की बात ही क्या है? आप

सत्य इसी क्षण हैं। "मुझे अधिक प्रकाश चाहिये, अधिक प्रकाश", यह मूर्खों की प्रार्थना है। तुम्हें ऐसी प्रार्थना करने की ज़रूरत नहीं। प्रकाश को बुलाने के लिये आपको ऐसी एक प्रार्थना भी नष्ट (व्यर्थ) करने की ज़रूरत नहीं है, यदि आप अपने को इसी पल अभिलाषाओं से शून्य करलें, यदि आप अपने को सब दुनियावी लगावों (प्रीतियों वा आसक्तियों) से छुटा लें। आप जानते हैं कि आप की हरेक कामना आप का एक भाग कतर लेती है, आपको अपने आपका एक छोटा अपूर्णांक बना कर छोड़ जाती है। पूर्ण मनुष्य का दर्शन हमारे लिए कितना विरल है! एक पूर्ण मनुष्य ईश्वरोपदिष्ट मनुष्य है, एक पूर्ण मनुष्य सत्य रूप है। हरेक अभिलाषा या लगन, आपको, समभिन्न (proper fraction) किन्तु वास्तव में एक विषम भाग, तुम्हारे अपने आपका तुच्छ अंश बना देती है। जिस समय इन अभिलाषाओं, लगनों, स्नेहों, द्वेषों और आसक्तियों वा अनुरागों को आप दूर हटादें, प्रकाश पाने की इच्छा को भी विताड़ित करदें, अपने आप को राग द्वेष से छुटा अचल स्थिरता प्राप्त करें, और एक क्षण के लिये ॐ की रट लगावें, जब आप के मन की कोई भी वृत्ति किसी व्यक्ति, किसी देह, या किसी पदार्थ में न रह जाय जब आप का वह समस्त भाग, जो आप अमुक पदार्थ या इच्छा के पास छोड़ चुके हैं, बिलकुल लोप हो जाय, तब आप शान्त होकर बैठें, ॐ रटें, और तब विचारें कि आप के अन्दर कौन है। क्या वह आप का अपना आप ही नहीं है, जो बालों को बढ़ाता है और आप की नाड़ियों में खून बहाता है? क्या वह आपका अपना आप (आत्मा) ही नहीं है जिस ने इस शरीर को रचा? यह विचित्र दुनिया भी आप ही के हाथ की कारीगरी है। निस्संदेह यह आप की अपनी ही

सृष्टि है। यह समझलो। आप के द्वारा सुनने वाला कौन है? क्या आप खुद ही नहीं हैं? वह कौन है जो आप के द्वारा देखता है? क्या आप खुद ही नहीं? आप की नाड़ियों में खून दौड़ाने वाला कौन है? क्या आप स्वयं नहीं हैं? यदि आप का वह अपना आप (आत्मा) ऐसे अपूर्व काम कर सकता है, तो यह दुनिया भी आप ही की रचना है। ऐसा समझो और अपने आत्मदेव में आनन्द मनाओ और अपने भीतर से उस (आनन्द) को प्राप्त करो, अपने निजात्मा ही का सुख लूटो। सब असाधारण कामनाओं और असामान्य अभिलाषाओं को दूर फेंकदो। ॐ २ रटो। यदि कुछ पल भी आप ऐसा करें तो सिर से पैर तक आपकी सारी हस्ती ज्योतिमय हो जाय, जब आप खुद ही प्रकाश हैं तो प्रकाश के लिये प्रार्थना क्यों? आप तुरन्त प्रकाश हो सकते हैं। अपने को पूर्ण बनाइये, कामनाओं और अनुराग से छुटकारा पाइये, इस राग द्वेष से पीछा छुटाइये। आसक्ति ही आप को अपने स्वरूप से अलग करती है। जब आप घर पहुंचें तब विचार करें कि किस चीज़ में आप का चित्त लगा हुआ है। यदि आप नामवरी या यशमें आसक्त हैं तो उसे दूर कर दीजिये। यदि लोक प्रियता की इच्छा के मोह में आप उलझ हुए हैं तो उस से अपने को विरक्त कर लीजिये। यदि संसार का हित करने की आकांक्षा, अभिलाषा में भी आप का अनुराग है तो उसे त्याग दीजये। यह एक ग़ैर मामूली सी बात मालूम होती है। दुनिया इतनी दीन क्यों हो कि वह हर घड़ी आप की सहायता मांगती रहे?

राम कहता है कि निष्काम भाव से या बिना किसी उद्देश के आप अपने कर्तव्य को कीजिये। अपने काम को करो, अपने काम में सुख अनुभव करो, क्यों कि आपका काम

स्वयं आनन्द है, क्योंकि काम आत्मानुभव का ही दूसरा नाम है। अपने काम में लगे रहिए, क्योंकि काम आपको करना ही है। काम आपको आत्मानुभव कराता है। किसी दूसरे हेतुसे काम न कीजिये। स्वतंत्र वृत्ति से अपने काम पर आइये जैसे एक राजकुमार मनोरंजन के लिये फुटबाल या दूसरा कोई खेल खेलने जाता है वैसे आप अपने कामपर जाइये, क्योंकि सुख या आनन्द कर्म के रूप में रहता है। हम अपने को स्वतंत्र समझें न कि किसी चीज से भी आबन्ध (क़ैद)।

लोग कहते हैं, 'कर्तव्य', 'कर्तव्य', 'कर्तव्य'। कर्तव्य तुम्हारा स्वामी क्यों बने? किसी का भी अपने को जवाबदेह न समझो आप स्वयं अपने प्रभु हैं। किसी डर को अपने पास न फटकने दो। हम कहते हैं कि तुम्हें काम करना होगा, किन्तु यदि आप कोई दूसरा काम कर रहे हैं, जिसे आपने धार्मिक मान लिया है, जिसे आपने पवित्र और पुण्य कर्म बना लिया है, और आप उसमें लगे हुए हैं, तो बहुत अच्छा है। जब तुम्हारे हाथ काम में नियुक्त नहीं हैं, जब तुम्हारे हाथ खाली हैं, और तुम अपने कमरे में बैठे हुए हो तब अपने प्रभुत्व का आनन्द लूटो, अपने आत्मानन्द का स्वाद लो। यह सर्व श्रेष्ठ काम है वहां (अपने कमरे में) अपने अन्तर्गत सब अनुरागों को दूर करदो। लोग कहते हैं "मोह वा अनुराग ज़रूरी है, हमसे काम कराने के लिए हेतु आवश्यक है"। यह एक मिथ्या कल्पना है। सब मोहों (आसक्तियों) को त्याग दीजिये, अपने को सब कामनाओं से मुक्त करलीजिये, तुरन्त ही आप अपने को स्वाधीन पावेंगे; आप अपने कंधों पर कोई ज़िम्मेदारी या भार लदा न देखेंगे। आपके कंधो पर बोझें हैं उन्हें आपने स्वयं लादा है आपके

बोझ को उतरवाने के लिये किसी के भी आने की ज़रूरत नहीं है। जब आप अपने कंधों पर कोई भार नहीं पाते हैं, जब आप सब प्रिय पदार्थों को अपने आप ही में पाते हैं, जब आप इस वेदान्त के तत्त्व को वर्ताव में लाते हैं, तब आप का सारा अस्तित्व प्रकाश रूप होजाता है। स्वयं प्रकाशों के प्रकाश होते हुए किससे आप को प्राकाश के लिए प्रार्थना करनी होगी? यही रहस्य है। तुम स्वाधीन होजाओ। तुमको कौन बांधता है? तुम्हें गुलाम बनानेवाला कौन है? तुम्हारी अपनी कामनायें, दूसरा कोई नहीं। संसार की समस्त आकर्षण शक्ति का, संसार की सकल शक्तियों का, स्रोत तुम ही हो। दुनिया के सब अपूर्व चमत्कार तुम्हारे अधम गुलामों से कुछ भी अधिक नहीं है। इन वासनाओं से पिंड छुटा लो, इसी समय तुम स्वाधीन हो जाओगे। और जब सब कामनाओं से तुम छूट जाओगे तब कौन सा परमानन्द ऐसा है जो तुम्हें न प्राप्त होगा? कोई ज़िम्मेदारी नहीं, कोई भय नहीं। तुम्हें डरना क्यों चाहिये? केवल इसी लिये कि तुम्हें आशंका है कि कहीं अमुक चीज़ जाती न रहे? तुम इस मनुष्य से डरते हो, तुम उस से डरते हो, तुम्हें हँसी का डर है, क्यों कि तुम्हें यश की अभिलाषा है, तुम कीर्ति में आसक्त हो। समस्त भय और चिन्ता इच्छाओं का परिणाम है। सिरदर्द और दिलदर्द इच्छाओं के नतीजे हैं। राष्ट्रपति या सम्राट के सामने तुम साष्टांग प्रणाम करते और झुक जाते हो, केवल इसीलिये कि तुम्हें उसकी कृपादृष्टि की चाह है। इच्छाओं से मुक्त होने पर, एक एक करके इन इच्छाओं को दूर करदेने पर तुम प्रभुओं के प्रभू और बादशाहों के बादशाह होजाते हो। उस समय तुम कितने स्वाधीन और स्वतंत्र होते हो! इस तरह पर राम कहता है कि सत्यका

मार्ग कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे तुम्हें पाना या पूरा करना है, तुम्हें अपने उद्योगों और प्रयत्नों से केवल उस बंधन और गुलामी को मिटाना है जिनकी रचना तुम ने अपनी इच्छाओं के द्वारा पहले ही से कर रक्खी है।

ॐ! ॐ!!

सांसारिक सुख तो पोस्ते के फूलों के समान हैं।
जोकि हाथ में आते ही बिखर जाते हैं॥
या नदी पर बरफ़ गिरने के तुल्य हैं।
जिसकी सफ़ेदी क्षणभर रहकर सदा के लिये लुप्त होजाती है॥

या उदीची *तेजस के समान है।
जिस का वेग दृष्टि की चपलता को भी पछाड़ देता है॥
या इन्द्र धनुष्य के मनोहर रूप के तुल्य हैं।
जो तूफान के आते ही विलीन हो जाते॥

---

* उत्तरीय तथा दक्षणीय ध्रुव पर गगन मण्डल में थोडे थोडे समय पर एक विस्तारित प्रकाश दिखाई देजाता है जो कि बडे वेग से भागता रहता है। इस की दौड की तेजी के कारण दृष्टि उस का पीछा नहीं कर सकती है। इस प्रकाश की दौड को अंग्रेजी में Borealis Race (बोरिआलिश रेस) कहते हैं।

धर्म का अन्तिम लक्ष्य।

(शनिवार, ६ दिसम्बर, १९०२ को हरमेटिक ब्रादरहुड हाल, सैन फ्रान्सिस्को में दिया हुआ व्याख्यान।)

मेरे भिन्नाकार रूपो, मेरे अन्य स्वरूपो!

विधिपूर्वक कई व्याख्यान दिये जायेंगे। आज का व्याख्यान उनकी प्रस्तावना समझी जाय। "धर्म का लक्ष्य क्या है, और हिन्दू उसे पाने का कैसे यत्न करते हैं?"

हिन्दुओं के अनुसार, हरेक व्यक्ति ईश्वर, बहुत ही क़ीमती रत्न, पूर्ण विधि, परमानन्द और अपने आपही में सब सुखों का स्रोत है। हरेक व्यक्ति ईश्वर तथा अपने आप ही में सब कुछ है। यदि ऐसा है, तो लोग कष्ट क्यों पाते हैं? वे इस लिये कष्ट नहीं पाते हैं कि उनके पास साधन वा दवा नहीं हैं, और न इस लिये कि वे अपने भीतर अनन्त खुशी अपने कब्ज़े में नहीं रखते हैं, न यही कारण है कि उनके अन्दर अमूल्य रत्न नहीं है। बल्कि कारण यह है कि वे उस गांठ को नहीं खोलना जानते जिसमें यह (साधन वा दवा, अनन्त हर्ष, अमूल्य रत्न) बँधा है, उस पेटी को नहीं खोलना जानते जिसमें यह सब बन्द है। दूसरे शब्दों में लोग अपनी ही आत्माओं में प्रवेश करना और अपने ही आत्मा को साक्षात्कार करने का उपाय नहीं जानते। सब धर्म हमारे अपने ही घूंघटों के हटाने और हमारे आत्मा की व्याख्या करने के केवल प्रयत्न हैं। हमारे भीतर अमूल्य रत्न है उनपर हमने अपने ही हाथों से अपने ही उद्योगों से पर्दा डाल रक्खा

है, और अपने को दुःखी, दीन अभागे बता लिया है, जैसा कि इमर्सन ने कहा है, "हरेक मनुष्य (वास्तव में) ईश्वर है, पर मूर्खों का अभिनय (खेल) कर रहा है"।

जो पर्दा हमारे नयनों पर पड़ा हुआ है केवल उसके हटाने और उच्छेदन के उद्यम ही ये सब सम्प्रदायें (मत) हैं। कुछ मत तो पर्दे को बहुत महीन कर देने में दूसरे मतों की अपेक्षा अधिक सफल हुए हैं किन्तु सब मतों में शुद्ध वृत्ति वा सच्ची भावना वाले लोग होते हैं, और जहाँ कहीं शुद्ध वृत्ति वा सच्ची भावना आती हैं वहाँ उतने समय के लिये पर्दा चाहे मोटा हो या महीन, दूर हट जाता है, और आत्म तत्त्व की एक झलक दिखाई पड़ जाती है। इस का दृष्टान्त इस उदाहरण से दिया जायगा। यह एक पर्दा या घूँघट है (इस समय स्वामी जी ने एक रुमाल अपनी आँखों पर रख लिया)। यह आँखों के सामने है। हम पर्दे को हटा कर देख सकते हैं, किन्तु पर्दा फिर आँखों के सामने आजाता है। पर्दा महीन कर लिया गया (इस समय रुमाल की कुछ तहें हटा दी गईं)। और अब जब पर्दा बहुत महीन है तब भी वह अलग सरकाया जा सकता है। किन्तु वह फिर आँखों के सामने आ जाता है। सदा के लिये वह आँखों से दूर नहीं हो जाता। हम इसे और भी महीन कर लेंगे। इस हालत में भी वह कुछ ही देर लिये हटाया जा सकता है, पर वह फिर आँखों के सामने आ जाता है। घूँघट अत्यन्त महीन कर लिया जाने पर, चाहे हटाया न भी जाय, तौ भी हमारी दृष्टि को नहीं रोकता। हम उस में से देख सकते हैं, और पहले की तरह अब भी, हम उसे समय समय पर हटा भी सकते हैं। जब पर्दा बिलकुल ही पतला कर लिया जाता है, तब व्यवहार में वह पर्दा नहीं रह जाता, और उसके होते हुए

भी हम परमानन्द का भोग करते हैं, हमारा ईश्वर का सामना हो जाता है, नहीं नहीं, हम स्वयं ईश्वर हो जाते हैं। अब इस संसार की कोई भी शक्ति सुख में विघ्नकारी या विनाशक नहीं हो सकती, कोई भी वस्तु हमारी राह नहीं रोक सकती। अज्ञान (माया) के पर्दे को अत्यन्त से अत्यन्त पतला कर देने वाले और सांसारिक जीवन में भी ज्ञानी को आनन्द दृष्टि का सुख भोगने की योग्यता देने वाले वेदान्त में दूसरे मतों से यही अधिकता है।

सभी धार्मिक मतों के अनुयायी समय समय पर परमात्मा से युक्त हो सकते हैं, और उतनी देर के लिये अपने नेत्रों के सामने से पर्दा, वह चाहे महीन हो या मोटा, हटा सकते हैं जितनी देर कि वे परमेश्वर से युक्त रहें। एक वेदान्ती भी यही कर सकता है, आनन्दमय समाधि की दशा में अपने को ला सकता है, किन्तु साधारण अवस्था में भी वह उस दिव्यदृष्टि का सुख भोगता है, जिस दिव्यदृष्टि का सुख मोटे पर्दे वाले मतों को नहीं मिलता।

इस संसार के सभी मत, भारतीय मतों को भी शामिल करके, तीन मुख्य भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। संस्कृत में इन्हें हम 'तस्यैवाहम्', 'तवैवाहम्', 'त्वमेवाहम्' कहते हैं। पहले 'तस्यैवाहम्' का अर्थ है "मैं उसका हूँ"। इस प्रकार का मत पर्दे को अपनी मोटाईतम सूरत में रखता है। धार्मिक मतों की दूसरी दशा है 'तवैवाहम्', जिसके अर्थ हैं, "मैं तेरा हूँ"। मतों या सिद्धान्तों की पहली और दूसरी अवस्था का परस्पर भेद आप के ध्यान में आ गया होगा। धर्म मार्ग में पहिली प्रकार की प्रवृत्ति से भक्त वा उपासक, ईश्वर को अपने से दूर, अलक्ष्य समझता है, और वह परमेश्वर की चर्चा अन्य पुरुष "मैं उसका हूँ" में करता है, मानो वह

गैरहाज़िर है। यह धर्म का प्रारम्भ है, धर्म के प्रत्येक बालक के लिये यह माता के दूध के समान है। एक बार इस दूध को विना पिये मनुष्य धर्म की राह पर आगे बढ़ने में असमर्थ रहता है। "मैं उसका हूँ" यदि मनुष्य इसे पूरी तरह से अनुभव कर ले, तो क्या यह मधुर नहीं है ? वह सबेरे जल्दी जागता है और समझता है कि, "मेरा मालिक मुझे जगाता है"। अपने दफतर के कामों पर जाता है और उन कामों को अपने प्रिय, मधुर प्रभु, ईश्वर के आदेश से पाया समझता है; सारा संसार ईश्वर का समझता है, और अपने घर, अपने सम्बन्धियों, अपने मित्रों को ईश्वर के वा ईश्वर की कृपा से अपने को मिले हुए ख़याल करता है। अरे, क्या (इससे) दुनिया सच्चे स्वर्ग में नहीं परिणत हो जाती, क्या संसार स्वर्ग में नहीं बदल जाता ? मनुष्य को सच्चा होना चाहिये, उसे उत्सुकता से और अपने दिलोजान से समझना तथा अनुभव करना चाहिये कि मेरे आसपास की हरेक वस्तु मेरे प्रभु की, मेरे ईश्वर की है और यह देह उसकी है। यह कल्पना भी पूरी तरह से अनुभव की जाने पर, अत्युत्तम हर्ष, अकथ सुख और परम आनन्द लाती है। यह (कल्पना) उत्कृष्ट है। अनुभव की जाने और अमल में लाई जाने पर, यह कल्पना (विचार) यथेष्ट है, मधुर है, परन्तु मत (सिद्धान्त) के हिसाब से यह प्रारम्भ मात्र है।

"तवैवाहं", अर्थात् "मैं तेरा हूं, मुझे तेरी हर घड़ी ज़रूरत है, मैं तेरा हूं, मैं तेरा", भक्ति वा धार्मिक जीवन की इस दूसरी गति, अथवा मतों की इस दूसरी दशा, की इससे तुलना कीजिये। पहली कल्पना मधुर थी, किन्तु यह मधुरतर है। पहली दशा बड़ी प्यारी और रुचिर थी, किन्तु यह अधिक प्यारी और अधिक रुचिर है। ज़रा (दोनों के) भेद पर ध्यान

दीजिये। घूँघट का पहले से पतला होजाना भेद का दृष्टान्त है। आप जानते हैं कि, "मैं तेरा हूं" में ईश्वर की चर्चा प्रथम वा अन्य पुरुष में नहीं की जाती। वह अब अनुपस्थित, पर्दे की ओट में नहीं माना जा रहा, किन्तु हमारे आमने-सामने आता है। वह हमारे निकट और हमें प्रिय होता है, हमारे बहुत समीप हो जाता है। अब वह पहले से हमारे अधिक नगीच आ जाता है, हमारी उससे अधिक घनिष्ठता हो जाती है। मत के हिसाब से यह (कल्पना) उच्चतर है। किन्तु प्रायः ऐसा होता है कि लोग इस मत में ही विश्वास जमा बैठते हैं और ईश्वर को अपने अति सुपरिचित अति समीपस्थ की भाँति सम्बोधन करते हैं, पर वे सच्ची उत्कट वृत्ति और सजीव विश्वास से रहित होते हैं।

धार्मिक उन्नति की पहली दशा में यदि सजीव विश्वास जोड़ दिया जाय, तो पर्दा, बहुत मोटा होते हुए भी, उस समय के लिये हट जाता है। जब कि कोई मनुष्य अपने पक्के हृदय से, अपने रक्त के हरेक बूँद से, इस कल्पना को भान (प्रत्यक्ष) कर रहा है कि वह ईश्वर का है, अर्थात् "मैं उस (परमात्मा) का हूँ" उसके शरीर के हरेक रोमकूप से मानो यही विचार बह रहा है; तब सत्यता, उत्कंठता, उत्साह और उमंग ये सब उस क्षण के लिये उस की आँखों के सामने से पर्दा हटा देते हैं और वह ईश्वर में लीन हो जाता है, ईश्वर में, सर्व रूप में डूब जाता है, ईश्वर भक्त हो जाता है, उस समय तो परमेश्वर हो जाता है। कभी २ "मैं तेरा हूं" के ऊँचे सिद्धान्त में श्रद्धा रखने वाले मनुष्य में भी उस सच्चे सजीव विश्वास का अभाव हो जाता है, और वह ईश्वर की मौजूदगी की मधुरता (मिठाइयों) का पूरा पूरा मज़ा नहीं उठाता। परन्तु धार्मिक मत की दूसरी

अवस्था में भी इस सजीव विश्वास और उत्कट इच्छा का योग किया जासकता है।

मत का तीसरा प्रकार "त्वमेवाहम" कहलाता है, जिसका अर्थ है "मैं तू ही हूं"। आप देखते हैं कि यह हमें ईश्वर के कितने निकट ले आता है। पहले रूप में "मैं उस का हूँ," ईश्वर परे वा दूर है। दूसरे रूप में "मैं तेरा हूं" ईश्वर का हमारा आमना-सामना है, वह हमारा अधिक नगीची होता है। किन्तु धार्मिक उन्नति की अन्तिम अवस्था में दोनों एक हो जाते हैं, और प्रेमी तथा प्रिय प्रेममें लुप्त (लीन) हो जाते हैं। इस तरह वेदान्त का अनुभव होता है। पतिंगा प्रकाश की ओर तब तक बढ़ता जाता है जब तक अपनी देह भस्म करके वह स्वयं प्रकाश नहीं हो जाता। उपनिषद (वेदान्त) शब्द के शब्दार्थ हैं, प्रकाशों के प्रकाश के पास इतना निकट (उप) पहुँचना कि विलग और विभाग करने वाला चेतना रूपी पतिंगा अत्यन्त निश्चय पूर्वक (नि) नष्ट (षद्) हो जाय। ईश्वर का सच्चा प्रेमी उस में मिल जाता है, और अनजाने, अनायास, बिना इच्छा किये ऐसे वाक्य उसके मुख से निकलते रहते हैं, "मै वह हूँ," "मैं वह हूँ," "मैं वह हूँ," "मैं तू हूँ," "तू और मैं एक हैं, "मैं ईश्वर हूँ, "मैं ईश्वर हूँ," "कुछ भी कम मैं नहीं हो सकता"। धार्मिक उत्कर्ष की यह अन्तिम अवस्था है। यह उच्चतम भक्ति है। यह वेदान्त कहलाता है, जिसका अर्थ है ज्ञान की इति श्री। समस्त ज्ञान की समाप्ति इसी में होती है, यहां अन्तिम ध्येय मिल जाता है। इस मत में भी जिस में पर्दा इतना महीन है कि एक पर्दे के रहते भी सारी असलियत हम देख सकते हैं, कुछ ऐसे लोग हैं जिन में उत्कट इच्छा, शुद्धि या एकाग्रता

की कमी है और वे पूरे साक्षात्कार का आनन्द लूटने के लिये पर्दे को सरका नहीं देते; और ऐसे भी हैं जो, बुद्धि से इस निश्चय पर पहुँच जाने के बाद, निदिध्यासन द्वारा इस दर्जे तक इस निश्चय का अनुभव करने लग जाते हैं कि वे पर्दा हटा देते हैं और स्वर्गीय आनन्द (अमृत) को भोगते हैं—वे स्वयं स्वर्ग रूप हो जाते हैं। ये इसी जीवन में मुक्त कहे जाते हैं, अर्थात् जीवन्मुक्त होते हैं।

मतको विशुद्ध या पर्दे को पतला करने की क्रिया मुख्यतः बुद्धि के द्वारा होती है, और पर्दा मनन वा निदिध्यासन द्वारा उठता है। मत वा सिद्धान्त के तीन रूपों का वर्णन किया जा चुका। अब हमें यह देखना चाहिये कि विभिन्न मतोंके लोगोंके लिये समय समय पर कहां तक पर्देका पलटना सम्भव है। कुछ हिन्दू कहानियां यहां दृष्टान्तों का काम देंगी।

एक लड़की बहुत ही प्रेमासक्त थी। उसकी सारी हस्ती ही प्रेम का रूप हो गई थी। एक बार वह बहुत बीमार थी। वैद्य बुलाये गये। उन्हों ने कहा कि इसे अच्छा करने का केवल एक यही उपाय है कि इसका कुछ खून निकाला जाय। उसकी भुजाओं के मांस में उन्हों ने अपने नश्तर लगाये। किन्तु उसकी देह से ज़रा सा भी खून नहीं निकला। पर उसी समय आश्चर्य के साथ देखा गया कि उसके प्रेमी की त्वचा से खून निकल रहा है। कैसी अद्भुत एकता है! तुम इसे दन्त-कथा वा झूठी कहानी कहोगे, किन्तु यह बात सत्य हो सकती है। प्रायः वे लोग, जो प्रेम का, यद्यपि नीचे दर्जे के प्रेमका, अनुभव करते हैं, अपने ही जीवनों में इसी प्रकार की सी घटना को प्रमाणित करते हैं। उस कुमारी ने अपने व्यक्तित्व को नितान्त भूल कर अपने प्रेमी

से अपने को एक कर दिया था और प्रेमी ने लड़की के प्यार में अपने को डुबा दिया था।

ईश्वर से ऐसी ही एकता धर्म है। मेरी देह उसकी देह हो जाय और उसका अपना आप मेरा अपना आप होजाय।

हिन्दुओं की धर्म-पुस्तक, योग वाशिष्ठ में, हमें एक महिला की कथा मिलती है, जो आग में डाल दी गई थी। लोगों ने देखा कि अग्नि ने उसे नहीं जलाया। उस का प्रेमी आग में झोंक दिया गया, किन्तु उसे भी अग्नि ने भस्म न किया। यह क्या बात है? वे नदी में फेंक दिये गये, किन्तु बहे नहीं। वे पहाड़ों की चोटियों से ढकेले गये, पर एक भी हड्डी न टूटी। क्यों कर? उस समय वे कुछ न बता सके, वे आपे से बाहर थे, वे ऐसी हालत में थे जिसमें उन तक कोई सवाल नहीं पहुँच सकते थे। बहुत काल के बाद कारण पूछा गया। उन्हों ने कहा कि हम दोनों ही के लिये उस समय सर्वत्र प्रियतम ही प्रियतम था, अग्नि अग्नि नहीं थी। वह (अग्नि) उस वामा (स्त्री) को अपना प्रेमी प्रतीत हुई, और मनुष्य को वही अग्नि अपनी प्यारी दिखाई दी। जल उन दोनों के लिये जल ही न था, वह सब प्रियतम स्वरूप था। उनके लिये पत्थर पत्थर न थे, उनके लिये देह देह न थी, सभी कुछ केवल प्रियतम था। प्रिय उन्हें हानि कैसे पहुँचा सकता था?

हिन्दू पुराणों में हम एक बालक की कहानी पढ़ते हैं, जिसके पिता ने, जो सम्राट था, उसे धार्मिक जीवन से हटाना चाहा था। वह चाहता था कि लड़का मेरी तरह दुनियादार रहे, किन्तु पिता की घुड़कियों और फटकारों ने लड़के पर कोई असर नहीं किया, वे उसपर व्यर्थ हुईं। बच्चे को उसके

इरादे से रोकने के लिये, पिता ने उसे आग में डाल दिया, किन्तु आग ने उसे नहीं जलाया। तब बादशाह (उस पिता)ने उसे बहते पानी में फेंक दिया, किन्तु पानी भी बच्चे को ऊपर उठाये रहा (अर्थात् बच्चा डूबा नहीं)। उसके लिये, आग, पानी, और पँचभूत हानिकर होने न पाये—उनकी सच्ची दशा का अनुभव हुआ। लड़का माया को छिन्न भिन्न कर(वा देहाध्यास से रहित होकर) इस असली दशा में अपने को ले आया था। उसके लिये हरेक वस्तु ईश्वर थी, पूर्ण प्रेम थी। धमकियां,घुड़कियां और आँखों का दिखाना,तलवार और ज्वाला मधुर स्वर्ग से किसी तरह कम न थीं। उसे हानि कैसे पहुँच सकती थी?

कुछ काल बीता एक हिन्दू साधु हिमालय के घोर जंगल में गंगा के तटपर बैठा हुआ था। वह आप ही आप शिवोहम् शिवोहम्,शिवोहम् (जिसके अर्थ हैं मैं ईश्वर हूँ, मैं ईश्वर हूँ) रट रहाथा और दूसरे तटपर बैठे हुए कुछ और साधु उसे देख रहे थे। घटनास्थल पर एक चीता आ गया। चीते ने आकर उसे अपने पंजों में दबोच लिया। और यद्यपि वह चीते के नखों में था,तथापि उसी निर्भीक भाव से वही उच्चारण शिवोहम्, शिवोहम्, शिवोहम् उसके मुख से जारी था। चीते ने उसके हाथ और पाँव नोच डाले, फिर भी नहीं हुई थी, वेग में किञ्चित भी घटी न थी। आप इसे क्या समझते हैं? "मैं परमेश्वर हूँ, मैं परमेश्वर हूं," इस कथन को आप क्या समझते हैं? क्या आप इसे अनीश्वर वादिता (नास्तिकता) कहेंगे? इस कथन का नास्तिकता से बड़ा अन्तर है, उस से बड़ी दूर है। यह अन्तिम अनुभव है। प्रेम की चोटी पहुचने पर क्या प्रेमी अपने प्रियतम से अपनी अभेदता नहीं समझते? क्या माता अपने बच्चे को

अपने मांस का मांस, अपने खून का खून, अपनी हड्डियों की हड्डियाँ नहीं समझती? और क्या माता अपने बच्चे को अपना दूसरा अहं, (अपना आप), अपना दूसरा आत्मा नहीं मानती? क्या बच्चे के स्वार्थों और माता के स्वार्थों में अनन्यता नहीं है? अवश्य है।

उस (परमात्मा) को अंकमें भरते हुए, उसे अंगीकार करते हुए, उसे व्याहते हुए उससे इस दर्जे तक और इतना अत्यन्त अभेद हो जाओ कि बिलगता का कोई चिन्ह भी न बाकी रहे। "ऐ प्रभु! तेरी मर्ज़ी पूरी हो" यह प्रार्थना करेन के बदले तुम्हें यह हर्ष हो कि मेरी मर्ज़ी पूरी हो रही है।

अमेरिका में इन दिनों जो रीतियां और ढंग आप पाते हैं उन से बहुत समय पूर्व के भारतवर्ष की रीतियों और ढंगोंमें बड़ा अन्तर था। अमेरिका में बिजली की बत्तियां रात में आप के घरोंको रौशन करती हैं। जिस काल की राम बात कहने लगा है उन दिनों, हिन्दू लोग मिट्टी के दीपक काम में लाते थे, और जब एक घर के दिये जल जाते थे तब उससे मिले हुए घरों के लोग अपने पड़ोसी के घर से अपने दिये जला लाते थे। एक दिन शाम को एक कुमारी, जो बेतरह कृष्ण के प्रेम में आसक्त थी, अपना दिया जलाने के बहाने से उनके बाप के घर गई। यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि वास्तव में कृष्णके मुख-मंडल के प्रकाश में पतिंगे की तरह अपने को झुलसाने ही की उसकी इच्छा थी कि जो उसे किसी दूसरे ऐसे घर में न लेजा कर जिसमें कि दीपक जल रहे थे, कृष्ण के घरमें ले गई थी। वास्तव में वह उन्हें देखने गई थी, दिया जलाने का तो उसने अपनी माता से बहाना किया था। उसे अपने दीपक की बत्ती जलते हुए दीपक की बत्ती में लगानी थी। किन्तु उसके नेत्र दीपकों की ओर न थे, वे प्यारे नन्हे कृष्ण के

चेहरे पर थे। वह कृष्ण के जादूभरे, मनोहर चेहरे को देख रही थी, इतने चाव से वह उन्हें देख रही थी कि उसे यह भी न जान पड़ा कि जलते हुए दीपक में मेरे दीपक की बत्ती लगने के बदले मेरी अँगुलियां उसमें जल रही हैं, दीपक की लाट उसकी अँगुलियों को जलाती रही, किन्तु उसे यह न जान पड़ा। समय बीतता गया और वह घर न लौटी। उसकी माता अधीर होगई, अब और देर न सह सकी। वह अपने पड़ोसी के घर गई। वहां उसने अपनी बेटी का हाथ जलते देखा और यह देखा कि लड़की को इसकी कोई खबर नहीं है। अँगुलियां झुलस गईं थीं और भुती हुई जाती थीं, और हड्डियां जलकर कोयला होगई थीं। माता ने सर्द आह भरी, उसकी सांस रुक गई, वह कलपने और रोने लगी, "अरे मेरी बेटी, मेरी दुलारी! तू क्या कर रही है? कृपा करके बता कि तू क्या कर रही है?" तब लड़की चैतन्य हुई, या, आप कह लें, वह अपनी चेतना से हटा ली गई।

ऐसी दैवी-प्रेम की दशा में, पूर्ण प्रेम की इस अवस्था में प्रेमी और प्रिय अनन्य हो जाते हैं। "मैं वह हूँ," "मैं तू हूँ"।

यह तीसरी अवस्था है। और इसके बाद वह दशा आती है जिसमें इन प्रवचनों का भी व्यवहार नहीं किया जा सकता।

ऊपर की कहानियां तीसरे प्रकार के प्रेम का दृष्टान्त हैं। नीचे की कथा धार्मिक उन्नति की दूसरी अवस्था, "मैं तेरा हूँ," "मैं तेरा हूँ" का उदाहरण है। दो लड़के एक गुरू के पास आये, और धर्म की शिक्षा देने की उससे प्रार्थना की। गुरू ने कहा कि बिना तुम्हारी परीक्षा लिये मैं शिक्षा न दूँगा। अस्तु, गुरू ने उन दोनों को एक एक कबूतर देकर कहा कि इन्हें ऐसे एकान्त स्थान में ले जाकर मार डालो कि जहां कोई देखने न पावे। उन में से एक तो सीधा भीड़वाली

आम सड़क में चला गया। सड़क पर जो लोग आ-जा रहे थे उनकी तरफ पीठ फेर कर और अपने सिर पर एक कपड़ा डाल कर उसने कबूतर का गला घोंट दिया और सीधा शिक्षक के पास आकर बोला, "प्रभु, प्रभु! (स्वामी, स्वामी!) आप की आज्ञा का पालन होगया"। स्वामी ने पूछा, "क्या तुमने उस समय कबूतर का गला घोंट दिया जब तुम्हें कोई नहीं देखता था?" उसने कहा, "हाँ"। बहुत ठीक, अब देखना है कि तुम्हारे साथी ने क्या किया है"।

दूसरा लड़का घने, घोर जंगल में चला गया, और कबूतर का गला उमेठने वाला ही था। पर ज़रा देखो तो, कबूतर की सौम्य, कोमल और चमकती हुई आँखें ठीक उसके चेहरे पर टकटकी लगाये हैं। उन आँखों से उसकी आँखे चार हुई, और कबुतर की गर्दन मरोड़ने निमित अपने प्रयत्न में वह सहम गया। उसके ख़याल में यह बात आई कि स्वामी ने जो शर्त लगाई है वह बड़ी बेढब है, कठिन है। यहां इस कबूतर में ही गवाह देखनेवाला मौजूद है। "ओह मैं अकेला नहीं हूँ, ऐसे स्थान में नहीं हूँ, जहां मुझे कोई न देखेगा। मैं देखा जा रहा हूं। अच्छा, मैं क्या करूं? कहां मैं जाऊं?" वह आगे बढ़ता बढ़ता किसी दूसरे बन में पहुँचा। वहां भी जब वह (उमेठने का) काम करने वाला था कबूतर की आँखों से उसकी आँखें मिलीं, और कबूतर ने इसे देखा। "द्रष्टा" स्वयं कबूतर में ही था।

बारंबार उसने कबूतर को मार डालने की चेष्टा की, बारम्बार उसने कोशिश की, किन्तु गुरू की लगाई हुई शर्त का पूरा करने में वह असफल हुआ। अनिच्छा पूर्वक टूटा दिल लेकर वह स्वामी के पास लौट आया, स्वामी के चरणों में कबूतर जीता रख दिया और खूब रोया

तथा चिल्लाया, 'गुरू जी! गुरू जी! (स्वामी, स्वामी!) मैं यह शर्त नहीं पूरी कर सकता। कृपा करके मुझे ब्रह्मज्ञान दीजिये। यह परीक्षा मेरे लिये बड़ी कठिन है। मैं इस परीक्षा में नहीं ठहर सकता। कृपया करुणामय होइये, मुझ पर रहम कीजिये और मुझे ब्रह्म-ज्ञान दीजिये, मुझे उसकी ज़रूरत है, अवश्य मुझे उसकी ज़रूरत है"। स्वामी ने बच्चे को ले लिया, उसे अपनी बाहों में उठा लिया, चूमा-चाटा और पीठ ठोंकी, और प्यार से उससे कहा, "ए प्यारे! ए प्यारे! जिस पक्षी का तुम वध करने वाले थे उसकी आँखों में जिस तरह तुमने लखने वाले को देखा है उसी तरह जहां कहीं तुम्हें जाने का संयोग हो और जहाँ कहीं किसी प्रलोभन से प्रेरित होकर तुम कोई पाप करने को उतारू हो, वहीं ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करो। जिस नारी की तुम्हें उत्कट लालसा हो उसके मांस और नयनों में द्रष्टा को, साक्षी को, प्रत्यक्ष करो। अनुभव करो कि उसके नेत्रों से भी तुम्हारा प्रभु तुम्हें देख रहा है। मेरा प्रभु मुझे देखता है। ऐसा आचरण करो कि मानो तुम सदा परम प्रभु के सामने हो, सदा परमेश्वर का तुम्हारा आमना-सामना है, सब समय प्यारे की नज़र के नीचे हो"।

कहा जाता है कि नेपिलस के एक बड़े अजायबघर में छत पर एक सुन्दर फिरिश्ते का सा चेहरा है और जादू घर के चाहे जिस भाग में आप हों, चाहे जिस हिस्से को आप देखते हों, आप छतपर जांय, आप नीचे जाँय, कहीं भी आप हों, फिरिश्ते की निर्मल चमकीली, तेजस्वी आँखें सीधी आप की आँखों को देखती होती हैं। आध्यात्मिक उन्नति की दूसरी दशा में जो लोग हैं वे, यदि सच्चे हैं तो, निरन्तर प्रभु के नेत्र के नीचे रहते हैं। वे समझते और अनुभव करते

हैं कि चाहे जहां हम जांय, चाहे घर की सबसे भीतरी कोठरी में, चाहे बन की अत्यन्त एकान्त गुफ़ाओं में, हम अपने को परमेश्वर के नयनों के सामने पाते हैं, हम उस से-देखे जाते हैं, "उसके प्रकाश" से प्रकाशित होते रहते हैं, "उसकी" कृपा से परिपुष्ट होते हैं।

अब हम आत्मविकास की प्रारम्भिक दशा पर आते हैं। "मैं उसका हूँ ! मैं उसका हूं ! मैं ईश्वर का हूँ" ! यह प्रारम्भिक दशा प्रतीत होती है। किन्तु, ओह ! धर्मोन्नति की प्रारम्भिक दशा का अनुभव करना लोगों के लिये कितना कठिन है। और यदि कोई मनुष्य सच्चा है, असल में एकाग्र चित्त है, असल में भक्तिमान् है, जो कुछ विश्वास करता है उसपर अमल करता है, इस विचार को रक्त के साथ अपनी नाड़ियों में संचारता है, अपने रक्त के प्रत्येक बूँद में इसका अनुभव करता है, इस से अर्थात् इस प्रारम्भिक मत से, अपने को भर लेता है, तो वह इस लोक में देवदूत (फिरिश्ता) होसकता है।

भारत का एक अति पूज्य महापुरुष अपनी नई जवानी में ऐसे स्थान में काम करता था जहां सदा भिक्षा देना, लोगों को भोजन और खज़ाना बांटना उसका कर्त्तव्य था। गरीब लोग उसके सामने लाये गये, जिन्हें तेरह मन आटा देनेकी उसके मालिक ने उसे आज्ञा भेजी थी। उसने उन्हें एक, दो, तीन, चार पाँच छे करके तेरह मन आटा दे दिया। आटा देते समय वह ज़ोर ज़ोर से गिनती करता जाता था। भारतीय भाषामें संख्या थरटीन को तेरह कहते हैं। यह बड़े ही मार्के का शब्द है। इसके दो अर्थ हैं एक तो तेरह—दस में तीन का योग, और शब्द के दूसरे अर्थ हैं, "मैं तेरा हूँ। मैं तेरा हूँ। मैं ईश्वर का हूँ। मैं उसका हिस्सा हूँ, मैं उसका हूँ"।

अच्छा, उसने बारह गिने और अब संख्या तेरां की बारी आई। जब वह उन्हे तेरहवां मन दे चुका था, और तेरां का शब्द कह रहा था,तब उसमें ऐसे पवित्र संस्कार उदय हुए कि उसने बास्तव में अपनी देह और सर्वस्व को ईश्वरार्पण कर दिया। वह दुनिया के बारे में सब बातें भूल गया, वह आपे से बाहर था,नहीं, नहीं, वह आपे में था। परमानन्द की इस दशा में वह तेरा, तेरा, तेरा, तेरा, रटने लगा, और लोगों को वेखबरी से, तेरा, तेरा कहता हुआ, मन के बाद मन तब तक देता रहा जब तक वह परमानन्द की दशा में आकर, आत्मसाक्षात्कार की दशा वा तुरीयावस्था में लीन हुआ मूर्छित नहीं होगया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो लोग प्रारम्भिक दशाओं में हैं, वे कभी कभी अत्यन्त ऊँचाइयों पर चढ़ सकते है, यदि वे उतने ही साधु हैं जितने उनके बचन, यदि वे सच्चे और उत्सुक हैं, यदि वे ईश्वर की आँखों में धूल नहीं झोकना चाहते, यदि वे ईश्वर से किये हुए वादों (प्रणों वा प्रतिज्ञाओं) को तोड़ नहीं डालना चाहते। एक बार भी जब मन्दिर या गिर्जा में वे कहें कि "मैं तेरा हूँ," तब उन्हें इसका अनुभव करना चाहिये, इसे चरितार्थ करना चाहिये, इसे प्रत्यक्ष करना चाहिये। यह सच्चा धर्म है।

दुनिया भर के भिन्न २ मत इन तीन शीर्षकों में बाँटे जा सकते हैं, "मैं उसका हूँ" "मैं उसका" ! "मैं तेरा हूँ !," "मैं वह हूँ"। जहाँ तक रूपों का सम्बन्ध है, दूसरा रूप, "मैं तेरा हूँ," पहले रूप "मैं उसका हूँ," से ऊँचा है। और तीसरा रूप 'मैं वह हूँ" सर्वोच्च है। इन तीनों रूपों में से किसी में भी हम सच्चा धार्मिक भाव भर सकते हैं।

हिन्दुओं के अनुसार, मत की पहली अवस्था पर सच्ची

धार्मिक वृत्ति डालने वाले इसी जीवन में, या दूसरे जन्म में, मत की सर्वोच्च अवस्था को प्राप्त होंगे। पहले वे मत की दूसरी अवस्था को प्राप्त होंगे, और फिर सच्ची धार्मिक वृत्ति की संगति करते हुए इसी जन्म या दूसरे आने वाले जन्म में धीरे धीरे उत्तरोत्तर उच्चतर धार्मिक मत "मैं वह हूँ," 'मैं तू हूँ"—पर चढ़ेंगे। जब यह दशा प्राप्त हो जाती है, तब फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। मनुष्य स्वतंत्र, स्वतंत्र, स्वतंत्र है! मनुष्य ईश्वर है, ईश्वर! वह सिरे पर (अर्थात् अन्त तक) पहुँच गया। ॐ!

Oh! brimful is my cup of joy,
Fulfilled completely all desires;
Sweet, morning zephyrs I employ,
Tis I in bloom their kiss admires.
The rainbow colours are my attires;
My errands run light, lightning fires.
All lovers I am, all sweethearts I,
I am desires, emotions I.
The smiles of rose, the pearls of dew,
The golden threads so fresh, so new.
Of sun's bright rays embalmed in sweetness,
The silvery moon, delicious neatness,
The playful ripples, waving trees,
Entwining creepers, humming bees,
Are my expression, my balmy breath,
My respiration in life and death,
All ill and good, and bitter and sweet,
In that my throbbing pulse doth beat.

What shall I do, or where remove?
I fill all space, no room to move.
Shall I suspect or I desire?
All time is time, all force my fire,
Can I be doubt or sorrow—stricken?
No, I am verily all Causation.
All time is now, all distance here,
All problem solved, solution clear.
No selfish aim, no tie, no bond,
To me do each and all respond.
Impersonal Lord of foe and friend,
To me doth every object bend.

अरे! मेरे आनन्द का प्याला लबालब भरा है।
पूरी तरह सब इच्छायें पूरी होगईं;
सबेरे की मधुर, मन्द वायु मेरी चेरी है,
(फूलों के) खिलाव में मैं ही उसकी चुम्बी सराहता हूँ।
इन्द्र धनुष के रंग मेरे वस्त्र हैं;
प्रकाश, दहकती हुई अग्नियां मेरे संदेश ले जाती हैं,
सभी प्रेमी मैं हूँ, सभी प्रिय मैं,
अभिलाषायें मैं हूँ, मैं ही मनोवृत्तियां।
गुलाब की मुस्कुराहटें, ओस के मोती,
सुनहले तागे ऐसे ताज़े, ऐसे नये,
सूर्य की चमकीली किरणें मधुरता में पगी हुईं,
रुपहला चन्द्रमा, रोचक स्वच्छता,
खिलाड़ी तरंगें, लहराते हुए वृक्ष,
लिपटी लतायें, भनभनाती मधुमक्खियां,

मेरा वाक्य हैं, मेरी सुगन्धित श्वास।
मेरा सांस लेना जीवन और मरण है।
सब बुरा और भला, तथा कड़ुआ और मीठा
मेरी उस धड़धड़ाती नाड़िका में उछलता है।
क्या मैं करूँ, या कहाँ हटूँ?
मैं सब स्थान घेरे हूँ, सरकने की कहीं जगह नहीं,
क्या मैं आशंका करूँ या कामना करूँ?
सब काल मैं हूँ, सब शक्ति मेरी आग।
क्या मैं सन्देह या शोक-पीड़ित हो सकता हूँ?
नहीं, मैं सचमुच सम्पूर्ण हेतु हूँ।
सब काल 'अब' है, सब देश 'यहाँ',
कोई स्वार्थ पूर्ण उद्देश नहीं, न आसक्ति न बंधन,
हरेक और सब मेरी अनुकूलता करते हैं।

(मैं हूँ) शत्रु और मित्र का अकर्तृक (निष्काम या निर्विकार अथवा निराकार) प्रभु,
हरेक पदार्थ मेरे आगे झुकता वा प्रणाम करता है।

परमार्थ निष्ठा और मानसिक शक्तियां

अथवा

अध्यात्मविद्या और प्रेत-विद्या संबन्धीय शक्तियां।

१५ दिसम्बर १९०२ को हरमेटिक ब्रादरहुड हाल
सैन फ्रांसिसको में दिया हुआ व्याख्यान।

नं ५०९ वान, नैस, ऐवेन्यू, सैन फ्रांसिस्को, कैलीफोरानियां में प्रश्नोत्तर के रूप में दी हुई स्वामी राम की व्याख्यान माला का पहिला व्याख्यान।

प्रश्न—प्रेत विद्या की शक्ति को बढ़ाना और मृत जनों (वा प्रेतों) से बात चीत (वा व्यवहार) करना क्या ठीक है? और यदि ठीक है तो इस के लिये क्या कोई निश्चित उपाय हैं कि जिनका अनुसरण किया जाय?

उत्तर—इस प्रश्न का पूरी तरह उत्तर देने के लिये हमें ऐसे विषयों में वेदान्त की दृष्टि के अनुसार प्रवेश करना होगा।

वेदान्त के अनुसार दो मार्ग हैं, प्रवृति-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग अथवा कर्म-मार्ग और ज्ञान या संन्यास-मार्ग। ईसाई मत जिसे "कर्मों से मुक्ति" (Salvation by Acts) कहता है, कर्म-मार्ग उस के अनुरूप है। और ज्ञान मार्ग उस के अनुरूप है जिसे ईसाईमत ब्रहम-विद्या "विश्वास से मुक्ति" (Salvation by Faith) कहता है। दोनों में क्या अन्तर है?

हिन्दुओं की व्याख्या के अनुसार, कर्म-मार्ग का लक्ष्य स्वार्थपूर्ण व्यक्तिगत शक्ति का संचय, संसार में साम्राज्य की वृद्धि है। अपने अधिकारों और सम्पत्ति को बढ़ाना,

फैलाना और विस्तीर्ण करना, यह है कर्म-मार्ग का उद्देश्य। उन्नति की एक विशेष (खास) अवस्था में यह हरेक के लिये स्वाभाविक ही है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत राज्य को फैलाना और बढ़ाना चाहता है। किन्तु सच्ची अमरता या सच्चे जीवन को पहुंचाने वाला यह मार्ग नहीं है। इस पथ के प्रयोग वा अनुभव प्राप्त करने पड़ेंगे, किन्तु ऐसा समय अवश्य आवेगा जब हम इस रास्ते से लौटेंगे और इस ग्रहण शील, कामनाशील, आशाशील अज्ञान को छोड़ कर वैराग्य का मार्ग अंगीकार करेंगे। हमारे परमसुख के लिये यह रास्ता ज़रूरी है।

कर्म-मार्ग तीन प्रकार का है। यह कर्म-मार्ग कोरी दुनियादारी है। उपविभागों (छोटे २ वर्गों) को छोड़ कर अब तीन तरह के संसार हैं।

प्रथम—प्रत्यक्ष संसार, स्थूल, भौतिक संसार।

द्वितीय—मानसिक संसार, आध्यात्मिक या सूक्ष्म संसार।

तृतीय—अविज्ञात संसार, जिस का शब्दार्थ अज्ञातों का संसार है।

ये तीन मुख्य संसार हैं, और एक हद तक वे एक दूसरे से स्वतंत्र हैं।

जिस समय हम स्वप्न-भूमि में, या सूक्ष्म अथवा मानसिक आदि दूसरे संसारों में होते हैं, तब यह स्थूल, भौतिक संसार मानो अलग रहता है। और तीसरे संसार, अविज्ञात संसार का भी यही हाल होता है। गहरी निद्रा-अवस्था के उदाहरण से इस तीसरे संसार की कुछ कल्पना की जा सकती है। उस "दशा" में तुम ऐसी-दुनिया-अज्ञातों के संसार-में

होते हो जो मेरा और तेरा के किसी प्रकार के संसर्ग से शून्य है।

ईसाइयों का बैकुंठ और नरक, मुसलमानों का बिहिश्त, हिन्दुओं का स्वर्ग, सभी दूसरी दुनिया. मानसिक संसार की दुनिया, पारलौकिक जगत की चीज़ें हैं। दूसरे संसार के अनेक उपविभाग हैं, दूसरे संसार के किन्हीं उपविभागों में हम प्रेतों को स्थान देते हैं। इस समय इन ब्योरों में प्रवेश करने की ज़रूरत नहीं है। कर्म-मार्ग कोरी दुनियादारी है। हमारी निजी (व्यक्तिगत) शक्ति के विस्तार के सब विचार दुनियादारी हैं।

एक बड़ा वैज्ञानिक भाफ या बिजली विषयक अनोखे आविष्कार करता है। और इस कृति से वह अपनी व्यक्तिगत शक्ति बढ़ाता है, तथा (प्रकृति के) तत्वों पर हमारी प्रभुता भी उसने बढ़ादी। हम उसके कृतज्ञ हैं, हम उसका मान करते हैं, हम उसका आदर और सम्मान करते हैं, किन्तु मुक्ति के लिये हम उसके पास नहीं जाते। हम उसकी ओर जाते हैं और उसके आविष्कारों की यथा योग्य क़दर करते हैं, किन्तु पूर्ण आनन्द के लिये, 'सर्व' रूप के लिये हम उसके पास नहीं जाते। उस विषय का उसे कुछ भी 'ज्ञान' नहीं है।

इसी तरह यदि कोई बड़ा प्रत्यक्षमूलक वा मनोविज्ञानी दार्शनिक है, जिसने मन की क्रियाओं का हमारा ज्ञान बढ़ाया है; हम उसके पास जाते हैं, हमें मन, बुद्धि, मनोभाव और भावनाओं के व्यापार बताने के कारण हम उसके आभारी होते हैं। किन्तु मन की असली शान्ति के लिये 'मिल' या 'स्पेंसर' सरीखे तत्व-वेत्ता की भी कोई शरण नहीं लेता। हरेक अपने २ मार्ग में बहुत अच्छा है, किन्तु जिस एक वस्तु की हमें ज़रूरत है वह हमें नहीं देता।

भारत में ऐसे अनेक लोग हैं जिनका प्रेत-विद्या अर्थात् प्रेतों से मिलाप कराने वाली विद्या में सरोकार है, जो लोग प्रेतों से सम्बन्ध रखते हैं। जिसे दूसरा संसार कहा जाता है उससे उन्हें बहुत कुछ जानकारी है। यहां के भौतिक पदार्थों की नहीं किन्तु अन्य दूसरे संसार की जानकारी है, परन्तु दुनियादारी तो दुनियादारी ही है, वह चाहे इस संसार की हो या दूसरे संसार की, चाहे इस प्रथम (स्थूल) संसार की हो या दूसर अथवा मानसिक संसार की। असलीयत या परमार्थ तत्व इन सब जगतों का आधार है और इनके ऊपर बर्तता है। तत्व की इस असलीयत का ज्ञान ही एक मात्र आवश्यक वस्तु है। हम इन (लौकिक वेत्ता) लोगों का वैसा ही स्वागत करते हैं जैसा हम एक वैज्ञानिक या शास्त्रज्ञ का स्वागत करेंगे, किन्तु असली शान्ति और सुख के लिये हम इनके सामने घुटने नहीं टेकते, इनसे हमें वह (शान्ति) नहीं मिल सकती।

कभी कभी ऐसा होता है कि एक वैज्ञानिक या प्रत्यक्ष पदार्थों का दार्शनिक दैवीज्ञान पा लेता है, प्रेत-विद्या का वेत्ता भी यथार्थ ज्ञान से सम्पन्न हो सकता है, किन्तु उसकी मानसिक वा प्रेत-विद्या जानने वाली शक्ति का, वा मृतों से वार्तालाप करने की उसकी सामर्थ्य का उसके दैवीज्ञान से उतना ही सम्बन्ध है जितना गणित विद्या के ज्ञान का सम्बन्ध राम के वेदान्त से है। राम गणित विद्या का उपाध्याय (professor) था, किन्तु उस गणित विद्या का इस वेदान्त से कोई वास्ता नहीं है, जिसका कि वह प्रचार कर रहा है। हमें दोनों को मिला न देना चाहिये।

भारतवर्ष में एक भला आदमी जो राम का बड़ा मित्र

था, इसी (प्रेतविद्या वादी) अर्थ में आत्मवादी था। एक स्थान पर उसे ले गये, उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी गई, और गणित विद्या की एक पोथी उसके सामने रख दी गई। यह पुस्तक उसने कभी नहीं देखी थी। इसी हालत में वह उसे पढ़ने लगा। गणित विद्या के अपने विशेष चिन्ह होते हैं, और इस पुस्तक में ऐसे नाम थे जिन्हें वह नहीं जानता था। उसने एक ताव कागज सादा माँगा और गणित की पोथी के पन्नों में जो कुछ था उसे कागज़ पर लिखता गया। वह चिन्हों के विशेष नाम तो नहीं बतला सका, पर सब की नक़ल कर डाली। उस में यह शक्ति थी। वह आप के विचारों को जान सकता था, और आप अपने हाथ से, उस से अलग में, जो कुछ लिख सकते थे उस सबकी वह तुरन्त नक़ल कर सकता था। अच्छा, यह एक प्रकार से आत्मवादी तो था किन्तु पवित्र पुरुष नहीं था, नाम मात्र को भी नहीं। दुनियादार, केवल दुनियादार वह था, और पवित्र या सुखी मनुष्य नहीं था।

इस आत्मवाद (प्रेतविद्या) को प्रायः विज्ञान की पदवी दी जाती है, और विज्ञान की हैसियत से हम उसका आदर कर सकते हैं, किन्तु इसको उससे न मिला देना चाहिये कि जो असली हर्ष पूर्ण आनन्द का दाता है, जो तुम्हें सब प्रलोभनों की पहुँच से परे कर देता है।

हम भारत के एक ऐसे मनुष्य को जानते हैं जो देखने में ६ महीने तक मुर्दा रहा। जीवन के आधार रूप प्राणों को रोक देने की इस क्रिया को खेचरी मुद्रा कहा जाता है और हठ योग के ग्रन्थों में यह पूरे विवरण सहित दी हुई है। वह अपने को उस दशा में ले आया था। उस में जीवन का कोई

चिन्ह नहीं था, उसकी नाड़ियों में रक्त नहीं बहता था। ६ महीने के बाद वह फिर जी उठा। यह एक ऐसा आदमी था जो एक महान् आश्चर्य रूप, दूसरा ईसा, समझा जा सकता था। ज़ाहिरा छे मास तक, केवल तीन दिन नहीं, मुर्दा रहने के बाद वह जी उठा। सुखी या स्वतंत्र होने से वह दूर था। उस ने जो पाप किये उनका वर्णन करने की राम को कोई ज़रूरत नहीं। जिस राजा के दरबार में वह ये काम करता था उसने अपने राज्य से उसे निकाल दिया।

एक और दूसरा आदमी था जो पानी पर चलता था। एक सच्चे साधु ने हँस कर उससे पूछा कि यह शक्ति पाने में तुम्हें कितना समय लगा। उसने जवाब दिया, सत्रह वर्ष मुझे लगे। साधु ने उत्तर दिया, "सत्रह वर्ष में तुम ने एक ऐसी शक्ति पाई है जिसका मूल्य दो पैसे है। हम एक मल्लाह को दो पैसे देते हैं और वह हमें नदी के पार उतार देता है।"

सब व्यक्तिगत शक्ति परिच्छिन्न है। वह तुम्हें उतना ही बाँधती है जितना कि कोई भी मिलकीयत या सम्पत्ति बाँधती है। जंजीरें ही हैं, चाहे लोहे की हों या सोने की, वे समान रूप से तुम्हें गुलाम बनाती हैं।

यदि ये शक्तियां मनुष्य को अति पवित्र बनाती हैं, तो कुत्तों को अति पवित्र समझना होगा। कुत्ते सूँघ कर जान लेते हैं कि बारहासिंगा कहाँ है। कुत्तों में ऐसी घ्राण-शक्ति होती है कि वैसी मनुष्य में नहीं होती, इस लिये वे अवश्य पवित्र होंगे।

एक फकीर था जो किसी भी मनुष्य को बादशाह बना सकता था। यह शक्ति उसे कैसे मिली थी? उसने उत्तर दिया कि मैं ने उपवास किये और तदुपरान्त गौओं की जूठन

खाई। एक विशेष विधि से वह रहा और फल-स्वरूप यह विशेष शक्ति पाई। एक भाई ने उस से कहा, "बादशाह के अधिकार भोगने को तुम हरेक व्यक्ति को देते हो, किन्तु तुम्हें केवल गौ की जूठन ही मिलती है"। भारतवासी इन शक्तियों को रखने वाले मनुष्यों का ऐसा आदर और मान करते हैं। अर्थात् सभी भारतीय जानते हैं कि केवल वही आत्म-ज्ञान है जो हमें सब ज़रूरतों से परे कर देता है।

एक भारतीय भूपति के सामने एक हठ योगी गया और लम्बी समाधि ले ली। जीवन का कोई चिह्न उसमें नहीं रहा। वर्षा और तूफान से उसकी रक्षा करने के खयाल से लोगों ने उसके ऊपर एक झोपड़ा बना दिया। एक रात को बड़ा बेढब तूफान आया और ईंटें योगी के सिर पर गिर पड़ीं। वह फिर जीवित हुआ और पहली बात उसके मुख से यही निकली, "मेरा इनाम एक घोड़ा, ऐ राजा! एक घोड़ा, एक घोड़ा, ऐ महाराज!" इस तरह भारतवासी जानते हैं कि ऐसे लोग जब तक समाधि की अवस्था में हैं, तब तक अच्छी हालत में हैं, वे सुखी हैं, किन्तु जब भौतिक धरातल पर होते हैं, तब उतने ही दुखी रहते हैं जितना कि कोई भी दूसरा प्राणी।

मुख से कटार, तलवार, या बड़ा चाकू निगल लेना, त्वचा में सूजा छेद लेना, और ऐसी दूसरी बहुतेरी बातें भारत में बहुत साधारण हैं। फिर, तीन या चार घंटे तक मन को समाधि अवस्था में रखना वैसी समाधि अवस्था नहीं है जिसकी प्राप्ति के लिये दैवी ज्ञान अनिवार्य हो। भारत में हज़ारों मनुष्य इसका अभ्यास करते हैं, किन्तु अधिकांश मामलों में यह अभ्यास केवल स्वर्ग से प्रोमीथियस

(promethens) की अग्नि की चोरी के तुल्य है। यह हमारी आँखों के सामने उतने समय के लिये पर्दा डाल लेना है, न कि सदा के लिये।

एक सरोवर या झील ले लो। उसके ऊपर हरी चादर या काई है। इस हरे ओहार (चादर) को हटाते ही नीचे का सुन्दर, मनोरम जल वहाँ चमकने लगेगा। तुम्हारा हाथ अलग हटते ही बिल्लौर सा निर्मल जो जल निकला था उसे फिर हरी चादर ढक लेगी। चित्त की झील को साफ कर डालना, युक्तिसंगत, साध्य, और व्यावहारिक है। हरी चादर को हटा कर कुछ मिनटों के लिये इसे साफ कर लेने से हम ध्यानावस्था में प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु इस तरह रोग सदा के लिये नहीं चंगा होता। बारंबार थोड़ी थोड़ी हरी चादर या काई निकालो और दूर फेक दो। इस तरह बाकी चादर पतली होती जायगी और अन्त में सारी झील साफ हो जायगी। यही उद्देश्य वेदान्त ने अपने सामने रक्खा है।

पुनः, यह एक सर्प है जो तुम्हें काटता है। यह सांप सर्दी से ठिठुर सकता है, वह कुंडली मार कर गेंद बन जाता है और हथियाया जासकता है। उसे घर ले आओ और आग के सामने रख दो। गर्मी पाकर वह अपने को फैलाता है और फिर काटता है। उसकी द्वेष-बुद्धि लौट आती है, और विष तो उस में है ही। सर्प का विष नहीं दूर हुआ। कुछ लोगों के ध्यान करने की क्रिया का यह दूसरा उदाहरण है। अधिकांश लोगों के मामले में समाधि की अवस्था केवल मनरूपी सांप का कुंडली मार लेना है। कामनायें इस सांप के ज़हरीले दांत हैं जो कुछ काल के लिये ज़ाहिरा उखड़ जाते हैं। यह क्षुद्र चित्त सोता है, या, दूसरे शब्दों में,

समाधि की अवस्था में प्राप्त होजाता है। साँप अमलन मुर्दा है, सर्दी खा गया है, किन्तु असल में मरा नहीं है। साँप को दूसरी तरह पर हथिया सकते हैं। कोई बाजा लेकर हम तब तक मंत्र फूंक सकते हैं जब तक वह मोहित न हो जाय। तब अपनी प्रवीणता से हम साँप को पकड़ सकते हैं, और उसके दांत तथा विष-थैलियाँ उखाड़ सकते हैं। अब तो साँप विष की थैलियों और दांतों से हीन है, उसका विष निकाल लिया गया, मन को काबू में लाने का यह वेदान्ती ढंग है।

प्रेत-वाहक (वा प्रेतवादी) आम तौर पर अपने मनों को उस अवस्था में ले आते हैं जिसकी तुलना सर्दी खाय साँप से की जा सकती है और तब आनन्द की अवस्था में भी होते हैं, किन्तु इस कर्ममय जीवन में उनके नातेदार, मित्र, भाई, बहन, और शत्रु सबके सब आते हैं और कामनाओं तथा मनोविकारों के सर्प को गर्मा देते हैं, वे इस साँप को जगा देते हैं, और मनोविकारों तथा कामनाओं के सर्प के जाग जाने पर अन्तर्गत चित्त फिर दुष्टता करने लगता है। साँप के विषदन्त उखाड़ नहीं लिये गये थे, और वे उतने ही ज़हरीले होते हैं जितने पहले। चरित्र का निर्माण नहीं होता, सच्ची रूहानियत (परमार्थ निष्ठा) नहीं प्राप्त होती।

इन लोगों में से अधिकांश तो अपनी इन रुपया कमाने की शक्तियों की सौदागरी करना चाहते हैं। मन की एकाग्रता बहुत ठीक है, किन्तु साँप को विष-हीन बनाओ, सर्प के विषदन्त उखाड़ डालो, सब प्रलोभनों से ऊपर उठो, अपना चरित्र बनाओ। इन बातों पर ध्यान देना है, और (ये) याद रहनी चाहियें। सब कमज़ोरियां दूर हो जाने पर, तुम

फिर विषदन्त हीन बेदाँतों के सर्प होते हो और तब भी तुम ठिठुर सकते हो। किन्तु उसी हालत में रहने की अब कोई ज़रूरत नहीं. तुम्हारे डंकों में अब ज़हर नहीं हैं। अब तुम चरित्रवान् हो और कर्ममय जीवन में अब तुम्हें हानी क्षति नहीं पहुँच सकती, तुम उससे परे हो।

एक मनुष्य शराब पीते पीते उन्मत्त हो जाता है, और उस दशा में अपना घर साढ़े सात हजार रुपये को बेच डालता है, उसी मतवाली दशा में साढ़े सात हज़ार रुपये पर अपना घर बेचने का विक्रय-पत्र (document) भी लिख देता है। उसकी स्त्री उसे शीघ्र ही सिरका या कोई खट्टी चीज़ पिलाती है और वह होश में आ जाता है। तब उसे अपनी करतूत और अपना बड़ा भारी घर कौड़ियों के मोल बेच डालने की बेवकूफी पर रंज होता है। घर मोल लेने वाले पर वह मुकदमा चलाने का निश्चय करता है और अपनी मदहोशी के आधार पर, जिस के कारण कि वह अपने कामों का ज़िम्मेदार नहीं था, जीत जाने की आशा करता है। उस समय वह सचेत नहीं था। यही हालत कुछ लोगों की है। वे एक तरह के नशे की हालत में हैं, और ऐसी हालत में वे ईश्वर के हाथ अपने को बेच डालते हैं; अपना सब धन दे देते हैं; अपनी सब मिलकीयत त्याग देते हैं; पिता, माता, बहन, भाई, मित्र, सब कुछ दे डालते हैं, सर्वस्व ईश्वरार्पण कर देते हैं। ईश्वर के लिये उन्हों ने सर्वस्व खो दिया है। बहुत खूब, वे उस समय योग (एकाग्रता) की अवस्था में हैं। और थोड़ी ही देर के बाद सांसारिक ज़रूरतें उन्हें सताने लगती हैं और छोटी छोटी चिन्तायें डसने लगती हैं, अपने अस्तित्व का बोध

कराती हैं। उन्हें सिरका दिया जाता है और सारा नशा हिरन हो जाता है, और तब वे हरेक चीज़ परमेश्वर से लौटा लेते हैं। यह देह मेरी देह हो जाती है, घर मेरा घर होजाता है, और वे मांगते ही रहते हैं, यहां तक कि वे उसे भी ले लेना चाहते हैं जो उनके पड़ोसी का है, ईश्वर से हरेक वस्तु लौटा लेना चाहते हैं। यह सब जैसा कुछ है बहुत ठीक है, किन्तु सच्ची शान्ति और सुख तुम्हें केवल तभी हो सकता है जब तुम पूर्णता की उस अवस्था में पहुँच जाते हो, जब तुम हरेक वस्तु सदा के लिये ब्रह्मार्पण कर देते हो और जब तुम अपने चरित्रका निर्माण कर डालते हो, जो तुम्हें सब क्लेशों के लिये अभेद्य बना देता है। अब दुनिया की कोई चिन्ता, कोई डर, कोई आशा नहीं रही। तुम इन सब झगड़ों से ऊपर उठ जाते हो।

वेदान्त के अनुसार, यदि एक क्षण के लिये भी तुम परब्रह्म से युक्त हो जाओ, तो तुम्हें कुछ शक्तियां मिल सकती हैं। क्या तुम सारी दुनिया अपनी नहीं करना चाहते ? त्याग की इन ऊँचाइयों पर यदि विधि पूर्वक पहुँचने में तुम सफल हो जाते हो तो सब कुछ तुम्हारा है।

यदि राजा के किसी पदाधिकारी को हम तलाश करते हैं, तो अकेले उसी को हम अपना मित्र बनाते हैं, उसके द्वारा बादशाह और दूसरे अधिकारियों को अपना मित्र बनाने में हम समर्थ हो सकते हैं या नहीं भी होसकते। पहले बादशाह को तलाश करो और तब दूसरे मातहत (उसके अधीन पुरुष) अपनी ही इच्छा से तुम को तलाश करेंगे और तुम्हारे मित्र हो जाँयगे।

भारत में कुछ लोग विशेष शक्तियां पाना चाहते हैं और

उनको पाने में सफल होते हैं। दूसरे लोग हैं जो उनसे घृणा करते हैं। वे त्याग के मार्ग पर चलना चाहते हैं, वे एक आवश्यक वस्तु को जानना चाहते हैं। त्याग के बिना इस संसार में कोई भी शक्ति नहीं है, किन्तु विशेष शक्तियों के पाने में त्याग अधूरा होता है। त्यागको पूर्ण होने दो, तो राज्य भी पूर्ण होता है, सारी दुनिया तुम्हारी हो जाती है। वे लोग जो त्याग के मार्ग पर चलते हैं खुद बादशाह को ढूँड लेते हैं। अपने ही अन्दर बादशाह का साक्षात्कार हो जाने पर सब कर्मचारी तुम्हारे सेवक हो जाते हैं। यह स्वाभाविक मार्ग है। ये शक्तियां तुम्हें ढूँढ़ने को विवश होंगी। तुम्हें शक्तियों को न ढूँढ़ना चाहिये।

प्रेतविद्या की शक्ति को बढ़ाना क्या उचित है? इस शक्ति ही के लिये इसका बढ़ाना दुनियादारी है। वेदान्त कहता है तुम मृतों से वार्तालाप कर सकते हो, निस्सन्देह यह संभव है, किन्तु जीतों से व्यवहार करना क्या उतना ही अच्छा, बल्कि ज़्यादा अच्छा नहीं है? यह ज्ञातव्य है कि मरे हुए हमारे पास आते हैं, या हमारा अपना आप ही उन रूपों को ग्रहण कर लेता है। वेदान्त का सिद्धान्त है कि यदि स्थूल भौतिक जगत की दृष्टि से तुम सूक्ष्म जगत (प्रेत-दुन्या) पर दृष्टि डालते हो, तो तुम कह सकते हो कि प्रेत तुम्हारे पास आते हैं, किन्तु तत्त्व दृष्टि से ये नाम मात्र स्थूल भौतिक जगत के लोगों का भी यह बयान करना गलत है कि, "अमुक व्यक्ति मुझसे मिलने आया था"। तत्व की दृष्टि से वे गलत हैं, क्योंकि वह केवल तुम्हारा अपना आप ही है जो तुम्हारे सामने, तुम्हारे ऊपर, तुम्हारे नीचे खड़ा होता है, और अन्य कोई नहीं। इन सब बाह्य

विविध रूपों में स्वयं तुम ही आविर्भूत होते हो। वेदान्त के अनुसार वन्धु, मित्र तुम हो। वस्तुतः यह कहना सत्य नहीं है कि प्रेत आते हैं, दूसरे रूपों और दूसरी छायाओं में वे खुद हम ही होते हैं।

मानसिक (वा प्रेत-विद्या की) शक्ति प्राप्त करने के निमित्त कोई नियत उपाय अनुसरण करने के लिये हैं? हाँ हैं। यदि कोई इंजीनियर बनना चाहता है तो उसे तत्सम्बन्धी शिक्षा-विशेष प्राप्त करनी होती है, यदि कोई वैद्य होने की इच्छा रखता है तो उसे वैद्यक महाविद्यालय में जाना होता है। इसी तरह इन प्रेत सम्बन्धीय चमत्कारों को देखने के लिये हमें विशेष शिक्षा पानी होगी, किन्तु इस समय उसके बताने की ज़रूरत नहीं है। राम छाया-मूर्तियों या भूत-प्रेतों के पीछे दौड़ने या परेशान होने की सिफारिश न करेगा। जहां कोई पवित्र पुरुष रहता है, वहां जाने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ती।

राम एक बार हिमालय की एक गुफा में रहा था जो प्रेतों का निवास-स्थान होने के कारण विख्यात थी। आस-पास के ग्रामों में बसनेवाले लोगों का कहना था कि अनेक साधु एक रात उस गुफा में रह कर मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। कुछ दर्शकों के डरकर मूर्छित हो जाने की बात भी कही जाती थी। जब राम ने उस गुफा में रहने की इच्छा प्रकट की तो हरेक व्यक्ति आश्चर्य में डूब गया। राम कई महीने उस गुफा में रहा और एक भी प्रेत या भूत नहीं आया। मालूम पड़ता है कि वे सब भाग गये थे। गुफा के भीतर साँप और बिच्छू थे, और उसके बाहर चीते थे। वे पास पड़ोस से गये नहीं, किन्तु राम के शरीर को कभी कोई हानि नहीं पहुँचाई

वेदान्त सिद्ध करता है कि स्वतंत्र या जीवनमुक्त लोग मृत्यु के बाद प्रेतयोनि कदापि नहीं पाते, अपनी ही कल्पनाओं के गुलामों को केवल भूतों या प्रेतों का जामा धारण करना पड़ता है। उन छायात्मक आकारों में केवल आसक्त प्राणी को बंधना पड़ता है।

वार्तालाप करने वालों में शिरोमणि डाक्टर जाह्नसन ने' जिससे कोई तर्क में पार नहीं पासकता था, क्योंकि "यदि उसकी पिस्तौल का निशाना चूक जाता तो वह उसके रुख से तुम्हें ज़मीन पर लिटा देता," वाद-विवाद में प्रतिपक्षी को बिना चुप किये कभी न हटनेवाले जाह्नसन ने, स्वप्न में बर्क से अपने को परास्त होते देखा। जाह्नसन के जैसे चरित्र के मनुष्य के लिये यह स्वप्न बड़ा ही खराब स्वप्न था। वह उठ बैठा और बेचैन होगया, वह फिर न सो सका। किन्तु मन अपनी प्रकृति—दैवी प्रकृति—के अनुसार अधिक काल तक खिन्न नहीं रह सकता था। उसे अपने को क़ाबू में लाना बड़ा, किसी न किसी तरह उसे क़ाबू में लाना पड़ा, किसी न किसी तरह उसे अपने को तसल्ली देना पड़ी। उसने विचार किया और इस नतीजे पर पहुँचा कि बर्क की युक्तियां भी मेरे ही मन की उपज थीं, असली बर्क उनके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता था। इस तरह उसने खुद ही अपने सामने बर्क के रूप में उपस्थित होकर अपने को नीचा दिखाया था। इसी प्रकार से तुम्हीं स्वयं अपने सामने भूतों, प्रेतों, शत्रुओं, मित्रों, रहवासियों, झीलों, नदियों, पहाड़ों के रूप में प्रकट होते हो। स्वप्नों में तुम नदियां और पहाड़ देखते हो। यदि वे तुमसे बाहिर हों तो बिछौने को नदी के जल से भरपूर हो जाना चाहिये और

पलंग को कमरे के साथ ही तुम्हें दिखाई पड़ने वाले पहाड़ के बोझ से दब कर चकनाचूर हो जाना चाहिये। भारी २ पर्वत और बढ़ते हुए नद सब तुम्हारे भीतर हैं। तुम अपने आप के दो टूक कर लेते हो, एक ओर तो बाहरी व्यापार (कर्म) और दूसरी ओर क्षुद्र विचार करनेवाला गुमाशता (कर्त्ता)। वास्तव में कर्त्ता भी तुम्हीं हो और कर्म भी तुम्हीं। तुम ही आत्मा हो और तुम ही नाममात्र अनात्मा हो। तुम ही सुन्दर गुलाब हो और प्रेमी बुलबुल भी तुम हो। तुम फूल हो और भौंरा भी तुम हो। हरेक चीज़ तुम हो। भूत और प्रेत, देवता और देवदूत, पापी और महात्मा, सब तुमही हो। इसे जानो, समझो, अनुभव करो, और तुम मुक्त हो। यह है संन्यास (त्याग) का मार्ग। अपना केन्द्र अपने से बाहर मत बनाओ, ऐसा करने से तुम गिर पड़ोगे। अपना पूर्ण विश्वास अपने में रक्खो, अपने केन्द्र में बने रहो, फिर तुम्हें कोई भी चीज़ न हिला सकेगी।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

श्रीः

चरित्र सम्बन्धी आध्यात्मिक नियम।

१७ दिसम्बर १९०२ को हरमेटिक ब्रादरहुड हाल,
सैन फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान।

जिस मनुष्य ने अपने को एक बार जान लिया है उसके लिये फिर ऐसी कौन सी वस्तु संसार में रह जाती है जिसकी इच्छा की जाय? साम्राज्य के खज़ानों में भी कुछ नहीं, सारे विश्व-ब्रह्माण्ड की कोई भी वस्तु उसका ध्यान नहीं खींच सकती। दुनिया की कोई भी सुन्दरता और मनोहरता उसका ध्यान नहीं आकर्षित कर सकती, ज्ञान के समस्त भाण्डारों की कोई भी वस्तु उसे नहीं लुभा सकती। अरे! कैसा सुख, कितना परमप्रमोद, कैसा पूर्ण आनन्द है, और कितना अवर्णनीय है! वह भाषातीत और अनिर्वचनीय है। वह अनन्त हर्ष, वह परम आनन्द, वह असीम सुख तुम हो, वह तुम्हारा असली अपना आप (स्वरूप) है, वह है तुम्हारी आत्मा।

यह जानते ही तुम समस्त ज़रूरतों तथा आवश्यकताओं से ऊपर जा खड़े होते हो। इसे पाते ही अखिल विश्व तुम्हारा हो जाता है।

दुनिया के प्रपंचों, छायाओं, अगियाबैतालों (will o' the wisqs के लिये इस अनन्त सुख, इस परम आनन्द को छोड़ कर, ओह! लोग भयंकर भूल करते हैं, अरे! बड़ी गलती करते हैं। यह सम्पूर्ण सुख तुम्हारा है, तुम वही हो। उसकी तलाश क्यों नहीं करते? अपने जन्म-स्वत्व पर क़बज़ा करो।

ईसा (Esaw) की तरह लोग अपने जन्मजात स्वत्व (birth right) को पेट (भोजन) के लिये बेंच देते हैं।

जूदास इस्कैरियट (Judas Iscariot) ने चाँदी के तीस टुकड़ों(रुपयों) के लिये ईसा मसीह को बेंच दिया था। अपने असली आत्म स्वरूप ईसा को,प्रभुओं के प्रभु को,इस दुनिया के मायावी सुखों के लिये न बेंचो,अक्लमन्द बनो, अधिकतर बुद्धिमान बनो।

सच्चा सुख तुम्हारे भीतर है, दैवी अमृत का महोदधि तुम्हारे भीतर है। उसे अपने भीतर ढूँढ़ो, उसे मालूम करो, उसे मालूम करो, वह यहीं है, तुम्हारा "स्वरूप"। वह शरीर, मन, बुद्धि नहीं है। वह न अभिलाषायें है और न अभिलाषी, और न इच्छित पदार्थ ही। तुम इन सब से ऊपर हो। वे सब तो आविर्भाव मात्र हैं। तुम हँसते हुए फूल के रूप में, चमकते हुए तारागणों के वेष में प्रकट होते हो। दुनिया में है ही क्या जो तुम्हें किसी भी वस्तु का अभिलाषी बना सकता है?

ज़रा ॐ का उच्चारण करो, जाप करो, और जब जपो तब अपना सारा चित्त उसमें लगा दो, अपनी सब शक्तियां उसमें भर दो, अपना पूरा अन्तःकरण उसमें रख दो, उसका अनुभव करने में अपने पूरे बल का प्रयोग करो। इस "ॐ" अक्षर का अर्थ है "मैं वह हूँ," "मैं और वह एक हैं," ॐ, 'वही मैं हूँ"। ॐ, ॐ। यदि संभव हो तो ॐ जपते समय अपने चित्त के सामने अपनी सब कमज़ोरियों और अपने सब प्रलोभनों को तलब करते रहो। उन्हें अपने पैरों से कुचल दो, उन्हे चूर करके बाहर निकालो, उनसे ऊपर उठो और विजयी होकर आओ।

भारत में पुराणों में एक सुन्दर कथा है। उसमें कृष्ण के

यमुना में फांदने का ज़िक्र है, जिससे पास खड़े हुए उनके पिता, माता, मित्र और कुटुम्बी आश्चर्य से अवाक् (गूंगे) रह गये। उनकी मौजूदगी ही में वे धारा में कूद पड़े। उन्हों (माता, पिता, आदि) ने समझा कि वह गया, वह अब कभी न बाहर निकलेगा। कथा कहती है कि वे (कृष्ण) नदी की तह पर पहुँचे, जहां एक हज़ार फना नाग था। कृष्ण अपनी बांसुरी बजाने लगे, वे ॐ मंत्र गाने लगे, वे नाग के फनों को ठोकराने लगे, वे एक एक करके नाग के सिरों को मर्दने लगे। किन्तु ज्योंही उन्हों ने एक एक करके नाग के अनेक फन चूर्ण किये, त्योंही दूसरे फन निकल आये और इस तरह उन्हें बड़ी कठिनता पड़ी। कृष्ण नाग के फनदार सिरों पर कूदते और नाचते रहे, वे अपनी बांसुरी में मंत्र गाते रहे, वे अपना मंत्र जपते (उच्चारण करते) और फिर भी कूदते तथा नाग के सिरों को रौंदते रहे। आध घंटे में नाग मर गया। मुरली के मनोहर स्वर और कृष्ण के चरणों द्वारा नाग के मर्दन से कोई प्रयोजन नहीं, नाग मर गया। नदी का जल रक्तमय हो गया और नाग का रुधिर नदी के जलमें मिल गया। नाग की सब नागिनियां कृष्ण की पूजा करने को आईं, कृष्ण की मधुर उपस्थिति का अमृत वे पान करना चाहती थीं। कृष्ण नदी से बाहर निकले, आश्चर्य-चकित सम्बन्धी और मित्र अपने आपे में आये, अपने प्यारे कृष्ण को पाकर, अपने प्रेमपात्र को फिर अपने बीच में देख कर वे ऐसे प्रसन्न हुए कि उनके उल्लास की सीमा न रही। इस कहानी के दोहरे अर्थ हैं। यह, मानो, उनके लिये एक शिक्षा-प्रद पाठ है जो अपनी आत्मा में सत्यता का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

कथा में झील या नदी चित्त की स्थानापन्न है, अथवा,

मन झील है, और जो कोई कृष्ण बनना चाहता है (कृष्ण शब्द देवता, ईश्वर का स्थानीय अथवा अर्थवाचक है), जो कोई खोये हुए स्वर्ग को फिर पाना चाहता है, उसे अपने आप ही में गम्भीर-गोता लगाने के लिये अपने चित्त की झील में गहरा उतरना पड़ेगा। उसे अपने ही स्वरूप में गहरी डुबकी लगानी होगी, तल पर पहुँच कर उसे विषधर नाग का, राग और इच्छा के ज़हरीले सांप का, दुनियादार मन रूपी विषधर भुजंग का मुकाबला करना होगा। उसे उसका मर्दन करना होगा, उसके फनों को विनाश करना होगा, उसके अनेक सिरों को ठोकराना होगा, उसे उसको मुग्ध और नष्ट करना होगा। उसे मन की झील को साफ करना चाहिये, उसे इस प्रकार अपना मन निर्मल करना चाहिये। विधि वही है जिसका कृष्ण ने अनुसरण किया था। उसे अपनी बांसुरी लेकर उसमें ॐ मंत्र बजाना होगा। उसे उस (बांसुरी) के द्वारा उस दिव्य, उस कल्याणकारी गीत को गाना होगा।

यह बाँसुरी क्या चीज़ है? तुम्हारे लिये यह केवल एक चिह्न है। बाँसुरी की ओर देखो। भारतीय कवि उसे बड़ा महत्त्व देते हैं। वह कौन सा महान् काम मुरली ने किया था जो उसे इतना ऊँचा पद मिला? किस महान् कर्म के बल से उस (बाँसुरी) ने इतना ऊँचा आसन पाया? जो कृष्ण पूजनीय थे, अति शक्तिशाली सम्राटों के प्रेम-भाजन थे, विशाल भारत में सहस्रों सुन्दरियाँ जिन की उपासना करती थीं, जो कृष्ण प्रिय थे, शक्तिशाली थे, प्रेम की मूर्ति थे, बड़े बड़े महाराज और सम्राट जिन (कृष्ण) की दयादृष्टि के भिखारी रहते थे, वही कृष्ण इस बाँसुरी को क्यों चूमते थे? ऐसे गौरव के स्थान पर उस बाँसुरी को किसने पहुँचाया?

बाँसुरी का उत्तर था "मुझ में एक गुण है, एक अच्छा बात मुझ में है। मैंने अपने को सब पदार्थों से खाली कर लिया है।

बाँसुरी सिर से पैर तक खाली है। "मैं ने अपने को अनात्मा से खाली कर दिया"। इसी तरह मुरली को अधरों में लगाने का अर्थ मन को शुद्ध करना, मन को परमात्मा में लगाना है, हरेक वस्तु को परमात्मा के, यार के चरणों में भेंट करना है। अपने सच्चे दिल से त्याग करो। देह पर कोई दावा न रक्खो, सारी स्वार्थपरता, सब स्वार्थ पूर्ण सम्बन्ध, मेरा और तेरा के सब विचार त्याग दो। इससे ऊपर उठो। ईश्वर का आराधन करना, "उसका" इस तरह पर आराधन करना जिस तरह पर कोई दुनियादार आशिक़ (प्रेमी) भी अपनी प्रिया से नहीं करता; सच्चे आत्मा के अनुभव के लिये उसी तरह भूखे और प्यासे होना जिस तरह पर दुनियादार आदमी उस वस्तु के लिये विकल और लालायित होता है जो उसे बहुत दिनों से नहीं नसीब हुई है, परमेश्वर के लिये भूखे और प्यासे होना; सत्य की उत्कंठा करना, अपने परम स्वरूप का आनन्द लेने के लिये उत्सुक होना, चित्त को ऐसी अवस्था में लाना ही बाँसुरी को ओठों में लगाना है। मन की इस दशा में, चित्त की इस शान्ति में ऐसे शुद्ध अन्तःकरण से ॐ मंत्र का उच्चारण करो, पवित्र ॐ अक्षर का गान आरम्भ करो। यही है बाँसुरी में संगीत की सांस डालना। अपने सम्पूर्ण जीवन को बाँसुरी बना डालो। अपने समग्र शरीर को बाँसुरी बना दो। उसे स्वार्थ-परता से खाली कर दो और उसे ईश्वर के श्वास से भर दो।

ॐ का उच्चारण करो (जप करो) और जपते समय अपने मन की झील के भीतर वह अन्वेषण शुरू करो। अनेक जीभों वाले विषैले साँप को ढूँढ़ निकालो। अगणित ज़रूरतें,

सांसारिक प्रवृत्तियाँ, और स्वार्थ पूर्ण वृत्तियाँ इस ज़हरीले साँप के शिर, जिह्वा और विषदन्त हैं। ॐ अक्षर जपते हुए उन्हें एक एक करके धूल में मिलाओ, अपने पैरों से उन्हें कुचलो, एक एक को छाँट लो, उन्हें जीत लो और नाश कर डालो।

आचरण निर्माण करो (वा चरित्र ठीक करो), निश्चयों को दृढ़ करो, प्रबल प्रतिज्ञायें और गम्भीर संकल्प करो, इस लिये कि जब तुम झील या नदी से बाहर आओ, तब तुम जल को विषाक्त (विषलिप्त) न पाओ, इस लिये कि जो कोई उस पानी को पिये, उसे ज़हर न चढ़े। उस (जल) को पूरी तरह से साफ करके (चित्त रूपी) झील से बाहर आओ। लोगों का चाहे तुम से मत भेद हो, वे चाहे तुम्हें सब तरह की मुसीबतों में डालें, वे भले ही तुम्हें बदनाम करें, किन्तु उनकी रीझ और खीझ, उनकी धमकियों और मधुर वचनों के होते हुए भी तुम्हारे चित्त की झील से दिव्य अत्यन्त निर्मल, ताज़े जल के सिवाय और कुछ नहीं बहना चाहिये। तुमसे अमृत बहना चाहिये; जिससे तुम्हारे लिये वैसा ही असम्भव हो जाय जैसा ताज़े चश्मे के लिये उन्हें विषलिप्त करना कि जो उससे पानी पीते हैं। हृदय को विमल करो, ॐ अक्षर का गान करो, दुर्बलता के सब स्थानों को चुन कर जड़ से उखाड़ दो। सुन्दर चरित्र का निर्माण करके विजयी होकर निकलो। मनोरागों का सर्प नष्ट हो जाने पर इच्छित पदार्थों को तुम उसी तरह अपनी उपासना करते पाओगे जिस तरह पर नाग की नागिनों ने नदी-तल में श्री कृष्ण की पूजा की, जब वे भुजंग का नाश कर चुके थे।

अपने व्यवहार के लिये एक परिलेख (diagram) बनाओ और उस परिलेख में साधारण पापों तथा त्रुटियों की

तालिका को रक्खो। यह नकशा खिच जाने पर आप सप्ताह का कोई दिन ले लें, उस दिन शायद आप को लोभ या शोक से पीड़ा पहुची हो, तब आप सीधे लोभ या शोक शीर्षक खाने में उस तारीख की रेखा पर (X) चिन्ह बनादो, और इसी तरह पर और भी कर लो। यह निजी रोज़नामचा रख कर आप अपनी त्रुटियों को अपने सामने ला सकते हैं, और अपनी दुर्बलताओं के अभिमुख हो सकते हैं।

राम यह सिफारिश नहीं करता कि ये चिन्ह परिलेख में बने रहें। आज तुमसे कोई दोष बन पड़ता है, तो आप अपने प्रति सच्चे रहो और आज ही नक्षत्राकार चिन्ह बना दो। दूसरे दिन सवेरे या जिस समय तुम्हे सुभीता हो, दरवाजा बन्द कर लो, और बिलकुल अकेले बैठ कर अपने सामने नकशा खोल कर रक्खो; और उसमें तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि तुम लोभ या शोक से अथवा किसी और दुर्गुण से दब गये; तब अपने को उपदेश देना शुरू करो।

इस देश में हमने दूसरों के अनेक उपदेश सुने। अपने समय के चाहे सब महान वक्ता आ जांय, ईसा अथवा परमेश्वर भी स्वयं चाहे आकर व्याख्यान वा उपदेश दें, किंतु दूसरे के उपदेशों से तब तक कोई लाभ नहीं हो सकता जब तक तुम अपने आप को उपदेश करने को उद्यत नहीं होते। वह ही अपने को उत्थापन (वा उन्नत) कर सकता है जो अपने को उपदेश देता है तुम जानते हो कि तुमने शोक को आत्म समर्पण किया, अर्थात् शोक के अधीन हुए। इस भावना की परीक्षा करो और इसके लक्षणों तथा पूर्व लक्षणों को स्थिर करो। शोक के वश में तुम क्यों आ गये थे? कारण निश्चय करो और तब दवा ठीक करो। उस समय तुम किसी उपदेशात्मक पुस्तक का पाठ करो, भगव-

दी । या इंजील कह लीजिये, या इमर्सन की रचनायें, अथवा कोई भी ऐसी पुस्तकें पढ़ो जो शोक के तल से तुम्हें ऊपर उठाने वाली हों, और उनकी सहायता से तथा अपने उपदेशों, बिचारों, एवं ध्यानों की सहायता से इस भावना को सदा के लिये अपने से निकाल बाहर करने का यत्न करो । यदि उस समय तुम्हें पूर्ण निश्चय हो जाय कि तुमने विजय पाई है और फिर कभी तुम न हारोगे, चाहे जो कुछ तुम पर घटे; जब तुम्हें बिश्वास हो जाय कि तुम ने उसे अपने पैरों से कुचल दिया है, और कि तुम्हारी जीत हो गई है; तब नक्षत्राकार चिन्ह मिटा दो। तब तुम मुक्त हो गतकाल के लिये अपने को धिक्कारना क्यों ? निर्जीव भूतकाल (अतीत) को अपना मुर्दा आप दफन करने दो।

एक एक करके इन दोषों को ले लो, हरेक का कारण और औषधि दरियाफ्त करो, हरेक के लक्षण और पूर्वलक्षण ठीक करो, अपने को उपदेश दो। किन्तु इस श्रेणी में इस प्रकार लक्षण और पूर्वलक्षण ठीक करने से पहले तुम में से हरेक को अपने को उपदेश देना चाहिये। हरेक को अपना काम आप ही करना होगा। बैठ जाओ और जिस से तुम्हें पीड़ा पहुँच रही है उस का ध्यान करो, और ध्यान करते समय ॐ का उच्चारण या गायन करो। जब ओठ उच्चारण करते हों, जब बाणी यह पवित्र अक्षर गुनगुनाती हो, जब तुम अपने संकल्पों पर दृढ़ होते हो, तब अनन्त स्वर्गीय कल्याणों का लाभ तुम्हें होता है। तुम भीतर से प्रबल होते हो। ये हैं तुम्हारे मनों की झील में उपद्रव करनेवाले नाग के कुछ फनदार सिर। उन्हें एक एक करके कुचल डालो। सब त्रुटियों का एक सामान्य कारण है, इन सब दोषों का

एक सामान्य आधार है। और वह है अज्ञान—सब प्रकारों का अज्ञान, विशेषतः शुद्ध आत्मा का अज्ञान, सच्ची आत्मा का अज्ञान।

लोग अपने को शरीर से अभिन्न मानते हैं, उसके इर्द-गिर्द सब प्रकार के सामान जमा करते हैं, और बाहर से सुखों को प्राप्त करना चाहते हैं। वे शरीर से अनन्य होगये हैं,और शोकाकुल या दुःखित होने के योग्य हैं।

शरीर से ऊपर उठो। मालूम और अनुभव करो कि तुम अनन्त, परम आत्मा हो, और राग या लोभ से तुम कैसे प्रभावित हो सकते हो ?

प्रकृति के साधारण नियमों का अज्ञान सत्यात्मा के सामान्य अज्ञान का एक विभाग है, जो लोगों को रोगी और दुर्बल बनाय रखता है। यह एक प्रकृति का पवित्र नियम है, जिसको बेकार नहीं किया जासकता। कानून यह है कि:—

"किसी प्रकार का भी दोष करो, कोई भी शरारत करो,अपने चित्तमें किसी तरहके भी अन्याय का पोषण करो, ये बुरे कर्म करो,ये पाप चाहे तुम ऐसे स्थानमें भी क्यों न करो जहाँ तुम्हें निश्चय है कि तुम्हें कोई भी पकड़े या देखेगा नहीं, जहां कोई भी तुमसे जवाब तलब न करेगा; बुराई के ये बीज जहाँ तुम्हारा जी चाहे बोवो, वह स्थान चाहे किले की तरह सुरक्षित ही क्यों न हो; पर अत्यन्त कठोर, निर्दय, अमोघ और अपरिहार्य कानून के अनुसार हवा बोने पर तुम्हें बवंडर अवश्य काटना पड़ेगा, तुम्हें चक्रवात या वातभ्रम (whirl-wind) काटना ही पड़ेगा, तुम्हें पीड़ा और क्लेश भोगना पड़ेगा। पाप का पुरस्कार मृत्यु है।"

लोग इसे एक भौतिक वा आचार सम्बन्धी कानून मानते हैं और कहते हैं कि इस में गणितशास्त्र के नियमों

की सी शक्ति नहीं है। वे कहते हैं कि इसमें गणितशास्त्रीय निश्चयात्मकता नहीं है। ऐसा समझने वाले भ्रान्त हैं। अत्यन्त निर्जन गुफाओं में कोई पाप करो और तत्क्षण तुम्हें देख कर चकित होना पड़ेगा कि तुम्हारे पैरों तले की घास तक खड़ी होकर तुम्हारे विरुद्ध गवाही दे रही है। समय पर तुम देखोगे कि दीवारों और वृक्षों तक की जुबानें हैं और वे बोलते हैं। तुम ईश्वर को, प्रकृति को धोखा नहीं दे सकते। यह एक सत्य है, यह एक क़ानून है। हम केवल हृदय के अन्दर पाप करते हैं। और बाहरी दुनिया में हम अपने को व्याकुलकारी और पीड़ादायक परिस्थतियों से घिरा हुआ, कठिनाइयों में वा सबतरह की दिक्कतों में पाते हैं। हम ऐसी हालत पाते हैं; और अपनी मुसीबतों के असली कारण का जिन्हें ज्ञान नहीं है वे परिस्थिति को दोष देते हैं, वे अपने आस-पास स्थितों (गिरद् निवाह) से लड़ाई ठान लेते हैं, वे नातेदारों, मित्रों, और अपने संगियों पर क़ानूनी मुकद्दमे चलाते हैं। यह एक दैवी क़ानून है जिस की घोषणा सब कोनों और सब बाज़ारों में की जानी चाहिये "ईश्वर की आँखों में धूल झोकने का यत्न करने से तुम को स्वयं अंधा होना पड़ेगा"।

नियम (दैवी विधान) है कि तुम्हें पवित्र होना चाहिये। अपवित्रता को आश्रय देने से तुम्हें नतीजे भोगना पड़ेंगे। इन अध्यामिक कानूनों को हम एक एक करके लेंगे और गणित शास्त्रीय निश्चयात्मकता के साथ उन्हें सिद्ध करेंगे। एक बार जब कोई मनुष्य इन अध्यात्मिक नियमों को समझ जाता है, तब फिर उसके लिये इन स्वार्थपूर्ण कामनाओं की ओर झुकना असम्भव होजाता है। इन अभिलाषाओं को वशीभूत कर लेने के बाद मन को जितनी देर तक चाहो

एकाग्र किया जासकता है।

अपने मन को जीतने के लिये क्या उपवास करना आवश्यक है ?

उपवास के सम्बन्ध में राम का कहना है कि न तो भूखे मरो और न अधिक खाओ। दोनों अतियों (extremes) को बचाना होगा। कभी कभी स्वभावतः उपवास होता है, हमें अपने अन्दर भोजन न करने की स्वाभाविक इच्छा जान पड़ती है। हृदय की ऐसी स्वाभाविक वृत्तियों को मानना चाहिये। किन्तु कभी कभी आन्तरिक आत्मा तुमसे आहार ग्रहण करने को कहता है। इन सहज वृत्तियों का अनुसरण करो।

बतौर सहायता के उपवास करना चाहिये। किन्तु हमें उसके दास न बन जाना चाहिये। लोग प्रायः व्रत करते हैं, क्योंकि वे उसके लिये लाचार किये जाते हैं। तब वे उपवास की इस गुलामी के दास होजाते हैं। राम गुलामी का अनुमोदन नहीं करता। उपवास के सम्बन्ध में (भारत का रिवाज पूछो तो) भारत में भी कुछ लोग उपवास करते हैं, और वहां ऐसी विशेष तिथियां हैं जिन में खास तौर पर विशेष प्रकार का भोजन बंधी हुई मात्रा में ग्रहण किया जाता है। पूर्णमासी और प्रतिपदा। (Full moon day new moon day) ये तिथियां हैं।

पूर्णमासी के दिन भारत में लोग ऐसा भोजन करते हैं जिससे पेट भारी न हो, और उस दिन वे खास तौर पर मन को एकाग्र करते हैं, क्योंकि वह दिन विशेषतया ध्यान के अनुकूल समझा जाता है। यदि तुम इसे प्रमाणित करने की कोशिश करो, तो तुम्हें सत्यासत्य का पता चले। ऐसा भोजन ग्रहण किया जाता है जो मनकी स्थिरता में विघ्न

नहीं डालता।

प्रतिपदा का दिन और प्रतिपदा की रात दोनों मन की एकाग्रता के सहायक और एक प्रकार के विशिष्टगुण से विशेषतया सहज स्वभाव सम्पन्न हैं।

सच्चे उपवास का अर्थ अपने को सब स्वार्थपूर्ण अभिप्रायों, अभिलाषाओं से मुक्त कर लेना, उन्हें पुष्ट न करना, अपने आपको उनसे पूरी तरह निर्मल कर देना है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

भारत की ओर से अमेरिका वासियों से बिनती (अपील)।

२८ जनवरी १९०३ को गोलडन गेट हाल, सेनफ्रांसिस्को
में दिया हुआ स्वामी राम का व्याख्यान

——:+:——

आज की वक्तृता का विषय अमेरिकावासियों से एक बिनती है। न जाने क्यों बहुत थोड़े अमेरिका बासी आये हैं। अच्छा, कुछ परवाह नहीं, जो आये हैं, वे ही, राम की दृष्टि में केवल अमेरिका के नहीं, बल्कि यूरोप और अखिल विश्व के प्रतिनिधि हैं। आज जो शब्द कहे जायंगे वे यदि इस लघु श्रोतृवर्ग के हृदय को स्पर्श करेंगे, यदि ये शब्द तुम में से किसी एक व्यक्ति के भी मर्म को भेद सकेंगे, यदि आप लोगों में से, संज्ञार्थ पाँच या छः या सात भी इस काम को उठा लेंगे, अथवा इस अरण्यरोदन को सुनलेंगे, तो राम इन शब्दों को सफल समझेगा।

राम आपके अन्तरात्मा से बिनती करता है, आप के भीतर की अनन्तता से बिनती करता है, और राम का दृढ़ विश्वास हैं कि एक व्यक्ति के भीतर की अनन्तता भी अद्भुत और बिस्मय जनक कार्य कर सकती है। कृपया वास्तविक आत्मा या अनन्तता के सामने सांप्रदायिकता (दलबन्दी) का कोई पर्दा न डाल दीजियेगा। दया करके कम से कम एक घंटे के लिए सब पर्दे, और रंग, जाति पांति तथा मत मतान्तर के सब भेद, जिनके कारण लोग किसी अपरिचित (बिदेशी) की बातें राज़ी से नहीं सुनने पाते, दूर कर दीजियेगा और मिटा दीजिये।

भारत का पूर्व कार्य (भूतकाल का)।

भारतीय बुद्धिमता के श्रेष्ठ रत्नों की चर्चा राम प्रायः दो महीनों से तुम से कर रहा है, भारतीय धर्म ग्रन्थों का पुष्टिकर अमृत, बलकारी दुग्ध, तुम्हें पहुँचा रहा है। राम आज तुम से, उस खान के सम्बन्ध में जिससे ऐसे रत्न निकले थे, उस गौ के विषय में जिसने यह दूध दिया था, कुछ कहना चाहता है। राम आज तुम से, उस देश के सम्बन्ध में जिसने पहले इस सत्य का प्रचार किया था, उस भूमि के विषय में जो संसार के सब धर्मों की जननी है, कुछ कहना चाहता है। हां, भारत ने, चाहे प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से, संसार को सब धर्मों का दान दिया। राम तुमसे उस भूमि के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता है, जो आपको अब भी यूरोप और अमेरिका में नित्य उपजने वाले आप के सब नवीन धर्म और सम्प्रदाय दे रही है। तुम्हारा सब नवविचार (नवीन मत, New Thought), थियोसोफी (Theosophy) स्पिरिचुआलिज़्म (अध्यातमवाद वा प्रेत-वाद Spiritualism) ईसाई विज्ञान (Christian Science), मानसिक रोगशमन (mental Healing) वे सब जिनका तुम्हें आज गर्व है, ये सभी बिना अपवाद के, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर मूल में भारत से उत्पन्न हुए हैं। राम तुम से उस भूमि के सम्बन्ध में कह रहा है जिसने भूत या वर्तमान काल में संसार को उसके सकल दर्शन-शास्त्र दिये हैं। अफलातू सुकरात, पिथागोरस, प्लोटिनस, (Plato, Socrates, Pythogoras, Plotinus) सरीखे आपके यूनानी तत्त्व-वेत्ता ये सब अपनी ज्ञान रश्मि (inspiration दैवज्ञान) के लिए भारत के ऋणी हैं। दर्शन शास्त्र के इतिहास से यह स्पष्ट होता है। शोपेनहावर, श्लेगल, शैलिंग,

इमकुज़िन इत्यादि (Schopenhauer, Schlegal, Schelling, M Cousin, etc.) ये लोग स्वीकार करते हैं कि वे अपने ज्ञान के लिए भारत के, वेदान्त, सांख्य, बौध धर्म, उपनिषदों, या गीता के ऋणी हैं। तुम्हारा आधुनिक अद्वैतवाद, वह चाहे अमेरिका या इग्लैंड या जर्मनी कहीं का भी हो, भारतवर्ष से अपना प्रकाश प्राप्त करता है। राम तुमसे शंकर और कृष्ण की भूमि का ज़िक्र कर रहा है; जिस भूमिने उन उच्च विचारों और उदात्त कल्पनाओं का प्रवंतन किया जिनसे तुम्हारे बन्दनीय इमर्सन, वाल्ट व्हिटमैन, सर एडविन आर्नल्ड और मैक्समूलर (Emerson, Walt Whitman, Sir Edwin Arnold, and Maxmuller) उत्तेजित वा प्रबोधित और उत्साह से परिपूर्ण हुए, जो न केवल काव्य और दर्शनशास्त्र की ही भूमि है, जो न केवल श्रेष्ठ विचार और उदात्त कल्पनाओं की ही भूमि है, वरन् जो उतने ही दर्जे पर शौर्य और शारीरिक बल की भी भूमि है। शारीरिक शक्ति और तेज की भूमि— ये शब्द सुनकर आप चकित होंगे। आज कल भी, कौन लोग अंग्रेज़ी सरकार के सब से बड़े सहायक और रक्षक हैं? ये पूर्वीय भारत के सिख, गोरखे, मरहटे और राजपूत हैं। उन सब अवसरों पर जब अंग्रेजों का बड़े भयंकर शत्रु से सामना होता है, तब भारत के ही सिपाही युद्ध के वेग को सम्हालते हैं। राम उस भारत की तुम से चर्चा कर रहा है जो किसी समय सब देशों से अधिक धनाढ्य था। भारत से पल कर राष्ट्र के बाद राष्ट्र समृद्ध हुए। अति कमनीय भारत की ही खोज में कोलम्बस को अमेरिका का पता लगा। शुरू में अमेरिका का नाम भारत था। राम तुम से उस भूमि की चर्चा कर रहा है जो एक समय संसार

में सर्वोपरि थी। वह संसार में रमणीक वनों और शस्यपूर्ण (fertile) खेतों से आच्छादित महान् हिमालय से सम्पन्न, अत्यन्त उन्नत और उत्कृष्ट देश था। किन्तु रामका इतना ही मतलब नहीं है। वह (भारत) न केवल शरीर से ही बल्कि बुद्धि, सदाचार, और अध्यात्म विद्या में भी संसार का शिरोमणि था। आज वह भूमि संसार का पाद है। ऐ अमेरिका वासियों! तुम आज संसार के शिर हो, और भारत की स्थिति इसके बिलकुल प्रतिकूल है, भारत तुम्हारा चरण है। राम तुमसे एक विनती करता है। ऐ शिर! शिर!! यदि तू बलवान और स्वस्थ होना चाहता है, तो तुझे पैरों की खबर लेनी चाहिए। यदि पैर क्षतिग्रस्त या चुटैल (चोट खाय) हों, तो शिर भी पीड़ित होगा। यदि पैरों में दर्द है, यदि पैर पीड़ित हैं, तो क्या शिर को उससे हानि न पहुँचेगी? ऐ शिर! तेरे प्रतिकूलस्थों (antepodes) की ओर से राम तुझसे विनती करता है। जिस माता ने अपने तत्वज्ञान और काव्य से, अपने उच्च विचारों और धर्म से समग्र संसार को पाला था, विश्व की वह माता, संसार की वही प्राचीन पालनहारी, आज बीमार है। तुम्हारी माता आज रोगिनी (sick) है। सब से बड़ा वंश (scion), आर्य परिवार की सब से बड़ी बहन, जो पूर्वीय भारत है, वह आज रोगग्रस्त है। क्या तुम उसकी खबर न लोगे? वह कामधेनु बीमार है। वह मरी नहीं है। वह रोगग्रस्ता है। तुम उसकी सहायता कर सकते हो। तुम उसे चंगा करने में सहायक बन सकते हो। भारत संसार को दूध, पुष्टिकर भोजन, बलकारी औषधि, ईश्वर-प्रेरित वा दैवीज्ञान (inspiring knowledge) देता रहा है। वही भारत आज गौ की तरह, सेवा शुश्रूषा की अपेक्षा कर रहा है। यह गौ भोजन के लिए हाय हाय कर रही है, क्षुधा

पीड़ित है, भूख और प्यास से मर रही है। तुम्हें उसको घास और चारा खिलाना है। संसार भर उससे दूध और बलकारी भोजन लेता रहा है, उसे सस्ती घास दो, उसे ऐसी कोई चीज़ दो कि वह जीती रहे। हे गोमांस-भक्षक इंग्लैंड, मांसाहारी यूरोपीय देश कहेंगे हम इस गौ को खिलाना नहीं चाहते, हम उसे मारकर खाना चाहते हैं। बहुत अच्छा, तुम्हारे जो मन भाव तुम करो। किन्तु एक बात याद रक्खो, वह यह कि यदि तुम उसे मार कर खाना भी चाहते हो, तो भी तुम्हें उसकी तन्दुरुस्ती का खयाल रखना चाहिए। रोगी गौ का मांस तुम्हारे स्वास्थ्य को बरबाद करदेगा, तुम्हारे लिए हानिकारक होगा। अरे इंग्लैंड और यूरोपीय राष्ट्र! यदि तुम उसे जीता ही रखना चाहते हो, तो तुम्हें उसके स्वास्थ्य की चिन्ता करनी होगी।

अमेरिका से आशा।

अमेरिका वासियों के सामने, इस युग के शूरवीर अमेरिका वासियों के सामने, स्वार्थ त्यागी अमेरिकनों से, महानुभाव अमेरिकनों से, जो सत्य के नाम में (निरीक्षणार्थ) चीड़-फाड़ के लिए अपने शरीर दे देते हैं, राम भारत की ओर से विनती करता है। अभी उसी दिन एक महानुभाव अमेरिकन ने सत्य का पक्ष पुष्ट करने के अभिप्राय से चीड़-फाड़ के लिये अपना जीवन अर्पण किया। पदार्थ विज्ञान पर अपना बलिदान करने वाले अमेरिका वासियो! राम तुम अमेरिकनों से विनती करता है। कहो, अमेरीकावासियों, क्या तुम न सुनोगे? कहो, अमेरिका के समाचार पत्रों,! क्या तुम सवाल न पूरा करोगे? राम के शरीर को जाने दो, राम को कुचल डालो, उसके टुकड़े टुकड़े कर दो, उसे खण्डों में काट डालो, इस शरीर को तुम्हारा

जो जी चाहे कर डालो किन्तु भारत के पक्ष को अपनालो, सत्य के पक्ष को अपना लो। अमेरिकनों को, कि जिन्हों ने गुलामी को मिटा दिया; अमेरिकनों को, कि जो आज इस देश में जाति-भेद को तोड़ रहे हैं; ऐसे धन्य अमेरिकनों को, ध्यान देनेके लिए भारत पुकार रहा है।

मान लीजिये कि भारत बहुत ही खराब है, मान लीजिये कि भारत ने संसार को कुछ भी नहीं दिया था, मान लीजिये कि हिन्दू दुनिया में अत्यन्त निकृष्ट लोग हैं, तब तो तुम्हारे ध्यान पर और भी अधिक [illegible], यह तो प्रबलतम कारण है कि तुम उसकी सेवा शुश्रूषा वा सहायता का ख्याल करो।

यदि कोई मनुष्य बीमार है तो वह केवल अपने ही को हानि नहीं पहुँचाता, बल्कि उस रोगको सारे संसार में फैलाता है। यदि एक व्यक्ति सर्दी (श्लेष्मा) से व्यथित हैं, दूसरे उसके संसर्ग से रोगी हो जाते हैं। भारत सर्दी से व्यथित हो रहा है। आप कह सकते हैं कि किसी गर्म और आतपव्यात (Sunny) देश को सर्दी कैसे दबा सकती है? वे जाड़े की सर्दी से नहीं पीड़ित हैं किन्तु वे ठिठुरने (तेज हीनता), दरिद्रता, और गरीबी की सर्दी से दुःखी हैं। अब आप जानते हैं कि यदि एक मनुष्य सर्दी से परेशान है, तो उसके पड़ोसियों को भी उसकी सर्दी व्यापेगी। यदि एक मनुष्य हैज़े (विसूचिका cholera) से हैरान है, तो उसका रोग दूसरों को जा दबावेगा। यदि एक मनुष्य चेचक से पीड़ित है तो दूसरों को छूत लगेगी। रोगी को उठा कर खड़ा करने में सहायता देना हरेक का और सबका कर्त्तव्य है, यदि उसके ही हित के लिए नहीं, तो सारे संसार के लिए अवश्य। यदि तुम उन्हें रोग या बीमारी से भुगतने देते हो, तो सारे संसार में तुम दुर्बलता फैलने

देते हो। (अत एव) समग्र संसार के हितार्थ राम तुमसे भारत का पक्ष लेने को कहता है। सत्य और न्याय के नाम में राम तुमसे दिलो-जान से भारत का पक्ष ग्रहण करने की प्रार्थना करता है।

आप पूछेंगे, भारत पर क्या मुसीबत है ? रोग राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक है।

भारत की राजनैतिक अवस्था।

उस अन्धकार ग्रस्त भूमि की दारुण राजनैतिक दुर्दशाके वर्णन में राम अधिक समय न लगावेगा। जिस देश में लाखों मनुष्य दुर्भिक्ष से मर रहे हैं, जहां क्षुधा और भोजनाभाव नूतन, अपरिपक्व लड़कों और लड़कियों का सञ्चय करते रहते हैं (अर्थात् जहां क्षुधा और भोजनाभाव के कारण छोटे छोटे बच्चे तथा नवयुवक आये दिन मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं), जहां ग़रीबी और महामारी होनहार युवकों को कली की अवस्था में ही नष्ट कर देती है; जहां नन्हा, कोमल बच्चा सूखे लटके हुए ओठों से रोता है क्योंकि दुर्भिक्ष पीड़िता माता दूध के अभाव से उसे पाल नहीं सकती; जिस देश में मुश्किल से एक भी ऐसा आदमी है जो दोनों (आय और व्यय के) सिरों को मिला सकता है, अर्थात् अपनी आय पर निर्वाह कर सकता है; जहां किसी तरह पेट पालता हुआ मनुष्य खूब सम्पन्न समझा जाता है; जहां राजा और राजकुमार भी प्रायः दुःखद आर्थिक झंझटों में फँसे पाये जाते हैं; जो देश अपनी शिकायतों और पीड़ाओं की चिन्ता न करता हुआ, भक्त, वफादार, और धीर है; ऐसी भयंकर ग़रीबी के देश में, दयालु सरकार, दीनता जनक (राज्य-) करों के अतिरिक्त, हाँफते हुए मजूरों की झुलसी हुई खाल और जमे हुए खून से करोड़ों रुपया

खसोट और निचोड़ लेना अनिवार्य आवश्यकता समझती है, केवल एक नाम और रूप की महिमा-वृद्धि और अभ्युदय के लिए, कपड़ों के एक जोड़े (समूह) का उत्सव मनाने के लिए, मांस के एक पिण्डको देवता बनाने के लिए, कि जिसे वे इंग्लैंड का महाराजाधिराज अभिषिक्त करने में अति प्रमोद (गर्व) करते हैं। इस भयंकर और महान् तमाशे तथा दिखावे के साथ २ मूर्खतापूर्ण फजूलखर्ची के हज़ारों छोटे-मोटे ढँग देश का शोषण कर रहे हैं, और उसके जीवन-रक्त तथा रस को चूस रहे हैं। अच्छी आमदनी के सब ऊँचे ओहदे एक मात्र अंग्रेज़ों के अधिकार में हैं। समाकुल (teeming) तीस कोटि मनुष्योंका एक भी प्रति-निधि पार्लामेंट (इंग्लैंड की पंचायती महासभा) में नहीं है। समस्त देशी उद्योगों को अंग्रेज़ों ने पस्त कर दिया है। भारतीय पैदावार की मलाई खा खा कर जानबुल (इंगलैंड) मोटा हो रहा है। ग़रीब हिन्दू के हिस्से में सूखा भूसा और मैला पानी पड़ता है, और बहुधा तो वह भी नहीं मिलता है। समस्त देशी कला-कौशल, उद्योग-धंधे और शिल्प-कर्म क्षीण होगए हैं। एक मात्र स्वाधीनता, जिसे लोग भोग सकते हैं, बल्कि एक मात्र मायात्मक (illusory) स्वाधीनता जो उनकी तन्दुरुस्ती, दौलत और सदाचार को नष्ट और भोग करती है (वह है झूठी आज़ादी की राक्षसी भावना), जो उन तेज़ अंग्रेज़ी शराबों और बिनाशकारी अंग्रेज़ी मदिराओं से ऋण ली गई है, जिनका प्रचार स्वभाव से ही नशे से परहेज़ करने वाले भारतवासियों में खूब बढ़ाया जाता है। इन शराबों का प्रचलन अंग्रेज़ों ने किया है। इस से तुम्हें भारतकी राज-नैतिक दुरावस्था की कल्पना हो सकती है। यह गति तुम्हें उनकी बाहरी हालत बताती है।

जिन आन्तरिक मुसीबतों से वे (भारतवासी) कष्ट पा रहे हैं, अब उनसे राम तुम्हारा परिचय करावेगा। अब उनके पतन के भीतरी, असली, तथा उनकी कठिनाइयों और निराशा के भीतरी या मुख्य, कारण के सम्बन्ध में तुम्हें कुछ बताया जायगा। इस विषय पर बहुत कुछ कहा जा सकता है, किन्तु सारा मामला विस्तार के साथ सुनने के लिए काफी समय लोगों के पास नहीं है, इस लिए हरेक चीज़ राम को छिलके में बीजवत् अर्थात् अत्यन्त संक्षिप्त रूप से कहनी होगी।

भारत के पतन की, गिराव की, व्याख्या वेदान्त दर्शन यों करता है। कि यह अपने कर्मों की बात है। कर्म का अर्थ है कोई ऐसी चीज़ जो अपनी करनियोंसे संघटित हुई हो। कर्म का शाब्दिक अर्थ है काम, हमारी अपनी करनी। यह जो वे आज काट रहे हैं वही है जो उन्हों ने उस दिन अपने लिए बोया था। हिन्दुओं ने भारत के आदिम निवासियों (aborigines) से जैसा बर्ताव किया था, वैसा ही बर्ताव अब वे विजयी राष्ट्रों से पा रहे हैं। जिस तरह हर बीमार, अपनी बीमारी का ज़िम्मेदार है, अज्ञानता से, अति भोजन करके, या तन्दुरुस्ती के कानूनों को तोड़ कर, अपने को बीमार करता है, उसी तरह भारतवासी अज्ञानता के कारण अपने ही कृत्यों के कारण बीमार हैं, रोगी हैं।

किन्तु बीमारी किसी तरह से आई हो, रोगी को जाकर डाँटना-डपटना वैद्य का काम नहीं है, वैद्य का काम है रोगी का दिल बढ़ाना, उसे चंगा करना। रोगी को फटकार कर तुम रोग को और भी खराब कर देते हो, रोगी की बीमारी बढ़ा देते हो। उनके कुकर्मों और अपराधों के लिए उन पर दोष लगाने का यह समय नहीं है।

हमारा और तुम्हारा कर्त्तव्य उन्हें मुसीबत से निकाल लेना है।

भारतीय जाति-भेद की जड़।

अर्थ शास्त्र हमें श्रम-विभाग (division of labour) की बाबत बतलाता है। सारे रोज़गार के फलने-फूलने के लिए किसी कारख़ाने या पुतलीघर में काम का विभाग हो जाना चाहिए। तुम्हारी अपनी देह में ही श्रम का विभाग है। आँख केवल देखती है, सुनती नहीं। कान केवल सुनते हैं, वे नेत्रों का काम नहीं करते। हाथ पैरों का काम नहीं करते। पैरों और हाथों को अपना अपना विशेष काम करना पड़ता है। यदि हम आँखों से सुनना और नाक से चलना चाहें, या यदि हम हाथों से सूँघना और कानों से भोजन करना चाहें, तो क्या यह वांछनीय है? नहीं। यह तो हमें जीव-फल (protoplasm) की उन्नति की प्रारम्भिक दशाओं में लौटा ले जायगा; यह तो हमें † मोनीरन्स (Monerons) बना देगा, जिनके पेट ही पेट होता है, और अकेला पेट ही आँख, कान, नाक और पैर सबका काम देता है। यह हम नहीं चाहते। श्रमका विभाग क़ानूनी (दैवी-विधानानुसार) है, आवश्यक है। और भारत में इस श्रम विभाग के सिद्धान्त पर ही एक समय जाति-प्रथा व्यवस्थित और स्थापित हुई थी। श्रम-विभाग के सिवाय और कुछ नहीं था। एक मनुष्य ने पुरोहित का काम ले लिया था, दूसरेने सैनिक का, क्योंकि यह दूसरा व्यक्ति अधिक लड़ाका और पशु-वृत्तियों अर्थात् रजोगुण से पूर्ण था। केवल अस्त्र धारण करने और लड़ने तथा शत्रुओं को पददलित करनेके योग्य

† एक प्रकार के कणज जीव (protozoon) वा प्रथम जीव का नामहै

होने के कारण, वह उपदेशक का मृदुल काम न ले सका। यह श्रम का विभाग था। कुछ दूसरे लोग थे जो कम मेहनत वाले रोज़गार (जैसे दुकानदारी) के अधिक उपयुक्त थे। इनमें धर्माचार्य के काम की उतनी क़ाबलियत नहीं थी जितनी दुकानदारी की। वे लोग भी थे, विशेष कर आदिम निवासी (aborigines), जो नाम मात्र को भी उत्कृष्ट (उन्नत) नहीं थे, जिन्हें कुछ भी शिक्षा नहीं मिली थी, जिन्हों ने अपने बचपन और लड़कपन का समय बेकार खोने में, आलस्य में अपने दिन गँवाने में, बिताया था। ये लोग धर्मप्रचारक का काम नहीं कर सकते थे, वे सिपाही का काम नहीं कर सकते थे, क्योंकि वे क़वायद नहीं जानते थे, युद्ध के लिए आवश्यक नियमबद्धता उनमें नहीं थी। वे दुकानदारी का भी काम करने में असमर्थ थे। दुकानदारी में भी कुछ विद्या और कुछ चतुरता की आवश्यकता होती है। ये लोग साधारण मजूर, झाड़ूदार या सड़क पर कंकड़ तोड़ने वाले मजूर का काम उठा लेने को राज़ी थे। इस तरह भारत में काम चलाने के लिए चार बिभाग किए गये। धर्माचार्य की जाति ब्राह्मण कहलायी, सैनिकों का काम करनेवाले लोग क्षत्री कहलाये, जिन लोगों ने दुकानदारी या व्यापारी का काम किया वे वैश्य कहलाय, और जिस वर्ग ने हाथ से मेहनत (manual labour) का कार्य लिया वह शूद्र कहलाया। जिस आदमी को जो काम पसन्द हो उसे करने की कोई मनाही या उसके करनेसे रोकने के लिए कोई कठोर कानून नहीं था। और क्या यह श्रम बिभाग सर्वत्र प्रचलित नहीं है? और क्या यह श्रम बिभाग अमेरिका में भी प्रचलित नहीं है? अमेरिका में ये वर्ग बर्तमान हैं वे इंगलैंड में भी मौजूद हैं, वे और सब कहीं जगह भी मौजूद हैं। क्या अमेरिका की अपनी जाति नहीं है? क्या

अमेरिकाबासियों के अपने ऊपरी दस (Upper ten) और अपने मामूली लोग नहीं हैं ? सर्वत्र यह बिभाग, स्वाभाविक बिभाग है। किन्तु, तो फिर भारत की जाति प्रथा में क्या दोष है ?

भारतमें हिन्दू कानून पर मनुस्मृति नाम का एक ग्रन्थ लिखा गया था। उन दिनों में यह पुस्तक सब श्रेणियों की सहायता के लिए थी। प्रत्येक वर्ग के लिए काम चलाने के बिभिन्न नियम, उपाय, उपदेश और आदेश इस में दिये गये थे। ब्राह्मणों की सहायतार्थ इसमें सुखकर नियम और तरीके दिये गये थे, और क्षत्रियों को अपना काम करने की बिधि इससे मालूम होती थी, और इस तरह उस समय की सब श्रेणियों का काम निकालने के लिए यह पुस्तक रची गई थी। धीरे धीरे यह पोथी गलत पढ़ी गयी, और इस की ब्याख्या गलत की गई.और किसी न किसी तरह हरेक चीज़ उलट पुलट होगई, हरेक बस्तु स्थान भ्रष्ट हो गई। यह सम्पूर्ण श्रेणी-क्रम और श्रम-विभाग की यह पद्धति जड़ हड्डियों का ढाँचा, सुरक्षित मृत शरीर या पत्थर के समान अचेतन कर दी गई। लोगों ने इसे ठोस बना दिया, उन्हों ने इसे घन बना दिया, और क़ौम की जान जाती रही। हरेक वस्तु बनावटी और यंत्रवत होगई। लोगों की सेवा करने के बदले मनुस्मृति निरंकुश ज़ालिम बन गई।

भारतीय जाति-प्रथा की अधोगति।

साधारणतः किसी विश्व विद्यालयमें चार दर्जे होते हैं, नवागत वा प्रथम (Freshman)*द्वितीय (Sophomore)

---

* अमरीकन कालेज में चार दर्जे होते हैं पहिले दर्जे को प्रथम [Freshman or first year], दूसरे दर्जे को सोफोमोर (Sophomore or second year), तीसरे दर्जे को जूनियर [Junior or third year] और चौथे को सीनियर [Senior or fourth year] कहते हैं।

अधम और ऊँचा दर्जा। ये दर्जे बहुत ठीक हैं, किन्तु अध्यापक यह नहीं चाहते कि ये दर्जे ज्यों के त्यों बने रहें, सब से नीचे दर्जे के विद्यार्थी तरक्क़ी न करें और उससे आगे के ऊँचे दर्जे में न चढ़ें. और उस दर्जे के विद्यार्थी उन्नति करके तृतीय-वर्षकी कक्षामें न जांय और तृतीय-वर्षकी कक्षाके छात्र चतुर्थ-वर्ष की कक्षा में न चढ़ाये जांय। दर्जों का होना ठीक और उत्तम है, यह विभाग बहुत ठीक था। किन्तु भारत में जो भूल, विकट भूल की गई, जो विकट भूल भारत की आज की अधोगति की ज़िम्मेदार है, वह है इस विभाग को जड़ स्तब्ध बनाना, इस विभाग को घन बनाना। इस तरह भारत की वर्तमान जाति-भेद-प्रथा का, भारत के कलंक वा क्षय के कारण का उद्भव हुआ।

मनुस्मृति के अस्थायी नियम और उपनियमों ने, जिन में उस समय के मामलों को बर्ता गया था, और जिनका सम्बन्ध अपने समय के अस्थायी मामलों से था, उन्हों ने धीरे धीरे श्रुति या उपनिषदों अथवा वेदान्त में प्रचारित अविनाशी सत्य के सार सम्मान और प्रतिष्ठाको हर लिया और अपना लिया। यह अनुभव करने के बदले कि "सब नियम और क़ानून हमारे लिए हैं," लोगों ने नियमों और क़ानूनों के लिये जीना शुरू किया। भूतपूर्व मृतकों के प्रमाण की सत्ता बढ़ा दी गई और सजीव आत्मदेव अन्तर्यामी भगवान् की आज्ञाओं से उसे कहीं ऊँचा स्थान दे दिया। मनुष्य व्यवहार रूप से केवल मांस और रुधिर, ब्राह्मण या क्षत्री, बना दिया गया, और असली "आत्मा" की, नित्य "सत्यस्वरूप" की, सब तरह पर पूरी २ उपेक्षा की गई। जातीय नियमों का भय और रीति-रस्म का भयंकर आतंक किसी व्यक्ति को एक क्षण के लिए भी दूसरी जातियों के लोगों से अपनी

एकता बोध करने की अनुमति नहीं देता। ब्राह्मणपन और क्षत्रीपन का विचार हर घड़ी इतना प्रबल बना रहता है कि आदमीपन का विचार हृदय में घुसने ही नहीं पाता।

मनु के समय से पृथिवी का रूप अनेक बार बदल चुका, नदियों ने अपने पेटे बदल दिये, जङ्गल काट कर जला दिये गये, वनस्पतियां और लता-गुल्म आदि और के और हो गये, क्षत्री या वीरों की जाति एक प्रकार से भारत से बिलकुल बह गई, देश की भाषा का देश में कहीं चिन्ह भी नहीं रह गया, और आज-कलहके हिन्दू के लिए वह वैसी ही बेजान और विदेश चीज़ है जैसी लैटिन और ग्रीक ; पर तो भी भारत के आत्मघाती आज तक जातीय रूढ़ियों (Conventionalities) के, अपने सम कालीनों (Contemporaries) के लिये मनु के बनाये हुए नियमों और रीतियों के, अधम गुलाम बने हुए हैं। स्वाधीन विचार वा चिन्तन अधर्म बल्कि महा पाप समझा जाता है, । मृतक भाषा से जो कुछ मिले, वही पवित्र है। यदि आप की युक्ति (तर्क) मृत पुरुषों की कहावतों और कल्पनाओं तथा तरंगों की महिमा, गुलाम की तरह, नहीं बढ़ाती, तो तुम नरक के योग्य हो, हरेक आदिम तुम्हारे ठीक विरुद्ध हो जायगा । तुम्हें नई शराब को पुरानी बोतलों में रखना चाहिए। सब काम श्रेष्ठ हैं, सब श्रम पवित्र हैं, किन्तु जाति-भाव की विपरीतता से सम्मान और अपमान अब बाहरी व्यापारो में जुड़ गये हैं। जो लोग अपनी लड़कपन की उम्र शिक्षा पाने में नहीं लगाते, उन्हें जवानी में कठिन शारीरिक श्रम करके अपने पिछले आलस्य का बदला चुकाना पड़ता है। अपनी पिछली सुस्ती की कीमत उन्हें एड़ी चोटी (वा ललाट) का पसीना बहाकर देनी पड़ती है। उनके श्रम को नीच कहने या शूद्र-कर्म को तुच्छ समझने का हमें और

आपको क्या अधिकार है? क्या उस श्रेणी का श्रम भी ठीक उतना ही आवश्यक नहीं है जितना कि धर्मगुरू या सैनिक या वैश्य (व्यापारी) का काम? आज कल मामला यहाँ तक बिगड़ गया है कि नीच जाति के लोग उस सड़क पर नहीं चलने पाते जिस पर उच्च जाति के लोग, ब्राह्मण, क्षत्री, या वैश्य चलते हैं। जिन आदरणीय ग्रामों या नगरों में उच्च जातीय लोग बसते हैं, उनसे बाहर हीन झोपड़ों में शूद्रों को रहना पड़ता है। यदि किसी ऊँचे जाति के आदमी पर किसी छोटी जाति के आदमी की छाया पड़ जाती है, तो उस उच्च जातीय व्यक्ति को अपने को निर्मल करने के लिए नहाना धोना पड़ता है। नीच जाति के आदमी द्वारा कोई चीज़ यदि छू ली जाती है, तो वह चीज़ गन्दी, छूत, हो जाती है, वह चीज़ किसी उच्च जाति के मनुष्य के काम की नहीं रह जाती। इन नीची जातियों के लोगों को अत्यन्त नीच और कठिन श्रम करने के इनाम में जो छिलके और टुकड़े उच्च जाति के लोगों से मिलते हैं उन्हीं पर छोटी जाति के लोगों को निर्वाह करना पड़ता है। राम को आप क्षमा कीजियेगा, यदि आप के सामने तथ्य रखने के लिए राम को लाचार होकर उन शब्दों का सहारा लेना पड़ता है जिन्हें सुनने का आपको अभ्यास नहीं है। इन नीच जाति के आदमियों को, इन बिचारे शूद्रों या पारहियों को सड़कों पर झाड़ू देनी पड़ती है, गंदी नालियों को अपने हाथों से रगड़ना और खूब साफ करना पड़ता है, इतना ही नहीं बल्कि पेशाब के हौदों (शौच कूप) को उन्हें साफ करना पड़ता है, और इस श्रम के इनाम में उन्हें बासी टुकड़े और छिलके दिये जाते हैं। वे अमीर नहीं हो सकते, वे अत्यन्त ग़रीब हैं। वे अमीर नहीं हो सकते हैं। उनकी दशा का ध्यान आने पर

राम के दिल में शूल उठती है। नीच जाति के लड़के उन पाठशालाओं में नहीं प्रवेश कर सकते जिन में उच्च जातीय लड़के शिक्षा पाते हैं, क्योंकि उनके वहां बैठने से उच्च जातीय लड़के छूत (नापाक) हो जाँयगे। ये पददलित लोग कैसे कोई शिक्षा पा सकते हैं, जबकि ये किसी तरह आधे पेट खाकर जीते हैं, और नित्य मर रहे हैं। भारत सब प्रकार की महामारियों और रोगों का प्रिय अड्डा है। और अस्वस्थ हिस्सों में रहने वाले ये गरीब शूद्र सब तरह के रोगों और स्पर्शजन्य बीमारियों के अत्यन्त सत्कारी यजमान (मीज़बान) होते हैं। वे उदारता पूर्वक हैज़ों, महामारियों और दुर्भिक्षों को भर पेट अपने शरीर खिलाने के लिए निमंत्रित करते हैं। ग़रीब, नीच, सदा समाज के पैर, बुनियाद या सहारा होते हैं। जो घमंडी समाज नीची जातियों की बाढ़ को रोकता और दबाता है, जो समाज दीन-हीन अज्ञानी पापियों को शिक्षा नहीं देता और उनसे बुरा बर्ताव करता है, वह समाज अपने ही पैर काटता है, वह समाज टूटफूट कर गिर जायगा।

ये नीच जाति के लोग अधिकांश में भारत के आदिम निवासी (aboriginal inhabitants) थे। आर्यों ने, जिन्हें आप आज हिन्दू कहते हैं, भारत के मूल निवासियों को जीता और उन्हें इस अत्यन्त नीच, अधम अधोगति में डाल दिया। उन्होंने उनकी यह दुर्दशा करदी। उन्होंने एक महा पाप किया, और आज जो वे काट रहे हैं, वही उन्हों ने बोया था। भारत के मूल निवासियों के प्रति व्यवहार के रूप में हिन्दुओं या आर्यों ने वही बोया था जो आज मुसलमानों और भारत के वर्तमान शासक अंग्रेज़ों के हाथों से वे पा रहे हैं। यह "कर्म" या "प्रतिफल" का क़ानून (दैवी नियम) है।

राम तुमसे एक हिन्दू, या भारतवासी, अथवा किसी क़ौम या वर्ग के व्यक्ति की हैसियत से नहीं कुछ कह रहा है। राम की स्थिति सत्य पर, पूर्ण सत्य पर और शुद्ध सत्य पर है। राम का शरीर भारत की सर्वोच्च जाति का है, और राम संसारकी अति नीच पददलित जाति की ओर से आपसे विनती कर रहा है। सत्य और न्यायके नाम में, "असली आत्मा" के नाममें, जो भारत के पारहियों का भी आत्मा है, साम्प्रदायिकता और परस्पर भेद के सब पर्दे और घूंघट हटा दीजिये और भारत के पीड़ित लोगों का पक्ष लीजिये।

यह जाति-भेद या विभाग समग्र राष्ट्र के पतन का साधन किस तरह हो रहा है? मूल में तो श्रम का विभाग और प्रेमकी रक्षा इसका अभिप्राय था। किन्तु भारतीय जाति में ये सब (चीज़ें) उलट-पुलट गई हैं, गाड़ी घोड़े के आगे जोत दी गई है। इन दिनों वहां प्रेम और एकता का विभाग तथा प्राचीन कर्मों और भेदों का संरक्षण है। किन्तु होना चाहिए था इसके विपरीत। एक परिवार के आदमी को जो कपड़े अनेक वर्षों पूर्व ठीक (fit) होते थे, वही उसे आज भी पहनने पड़ते हैं, ऐसी हालत में जब कि नसें और हड्डियां बच्चे के कपड़ों से बढ़ चुकी हैं। इस प्रकार, चीन देश की महिलाओं के पैरों की तरह, हिन्दुओं की बुद्धि तंग साँचों और संकोचने वाले तथा निचोड़ने वाले जूतों और सलूकों में अटकी तथा दबी रक्खी जाती है। एक हिन्दू की कट्टर शिक्षा दो दीवालों के बीच में दौड़नेके तुल्यहै।

एक आदमी दो रोगों से बीमार था। उसकी आंखें आई थीं और पेट दुखता था। उसने वैद्य को अपनी तकलीफें सुनाईं। वैद्य ने उसे दो दवाइयां दीं, एक पेट के लिए और एक नेत्रों के लिए। किन्तु इस रोगी ने दोनों को मिला दिया।

पेट के लिए जो औषधि थी उसमें काली मिर्च, निमक और कुछ और ऐसी ही गर्म चीज़ें, उसके पेट को दुरुस्त करने के लिए पड़ी हुई थीं, और नेत्रों के लिए जो दवा थी उसमें सुरमा और जस्ता और ऐसी ही कुछ चीज़ें पड़ी हुई थीं। हम जानते हैं कि यदि सुरमा खाया जाय तो ज़हरीला होता है, और दूसरी चीज़ें, मिर्च और निमक आदि, खाई तो जा सकती हैं पर आंखों में नहीं लगाई जा सकतीं। इस आदमी ने दोनों चीज़ें एक दूसरी से बदल लीं, और जो वस्तु नयनों में लगाने को थी वह उसने खा ली, और खाने वाली औषधि आंखों में लगा ली। इस तरह आंखों की आफत और पेट की पीड़ा बढ़ गई। यही भारत में हुआ है। काम में विभाग होना चाहिए था, किन्तु चित्त में एकता और संगति। पर बदनसीबी और नासमझी से प्रेम और चित्त में विभाग है और बाहरी कर्त्तव्यों को सुरक्षित रखने की चेष्टा की जाती है।

रीति और रिवाज (Custom and Conventionality) के दैत्य ने जाति की सम्पूर्ण जान (प्राण) और मौलिकता को मानों कंकड़ और पत्थर बना दिया है। कट्टरता के अर्थ अब विलगता (exclusivism) निराशावाद (Pessimism) और मूकस्थिति पालकता (dumb conservatism) हो गई है। असली ज़िन्दगी में, ऊंच जाति के आदमी ने "असली आत्मा" की, भीतरी "स्वर्ग" की, महिमा और प्रताप को भूल कर आत्मा को, वेदान्त को, अपने पैरों तले कुचल डाला है, और मूर्खता पूर्वक अपनी दुनयवी दशा, शान और व्यक्तिगत सफलताओं पर गर्व करना शुरू किया है। इसके बाद उसे अपनी प्रतिष्ठा या गौरव बनाये रखने की चिन्ता हुई, तथा और भी व्यक्तिगत सम्मानों एवं स्वार्थ पूर्ण अभिवृद्धि की लालसा और फिक्र हुई। "मोहरों की लूट और कोयलों पर

छाप" (penny wise, pound-foolish policy) की यह नीति अन्त में उच्च जाति के मनुष्य की अवनति और पतन का तथा साथ ही साथ नीच जाति के जन समूह के विनाश का कारण हुई, जिससे वह (ऊंची जातिका मनुष्य) फूल उठा और उसके दर्प तथा अज्ञान की और वृद्धि हो गई।

इसे हम कैसे दूर करें ? आज क्या हमें इन हिन्दुओं और आर्य्यों को कुचलना शुरू करना चाहिए, क्योंकि इन्हों ने शूद्रों के साथ ऐसी निठुरता की थी ? क्या इससे बात बन जायगी ? नहीं,नहीं। किसी गवैये को सब से बड़ा दण्ड आप यही दे सकते हैं कि उसकी गलती बता दें और भूल सुधार दें। किसी पापी या बदमाश को सब से कठिन सज़ा आप यही दे सकते हैं कि उसे शिक्षा दें, उसकी मूढ़ता को नाश कर दें। यदि आप उसकी पाप वृत्ति को मार डालना चाहते हैं, तो उस पापी को मार डालने की आपको ज़रूरत नहीं है। पापी तो उस में अज्ञान है। उसे सिखाइये-पढ़ाइये, उस की अविद्या दूर कीजिये। मामला इस तरह आप दुरुस्त कर सकते हैं। दोष निवारण का, अज्ञानरूपी रोगके कीटों के विनाश का यह ठीक उपाय हैं।

आर्य और हिन्दू काफी दुःख भोग चुके हैं। मूल-निवासियों (aborigines) पर की हुई निठुरता का बदला लेने और नाराज़ होने के लिए यूरोप या अमेरिका से आपके जाने की ज़रूरत नहीं है। वे अपने किये की क़ीमत खूब चुका चुके हैं। सदियों से वे विदेशी जुए के नीचे हैं, गुलामी में पड़े हुए हैं। अफगानिस्तान के लोगों ने देश पर चढ़ाई की और उन्हें विजय किया। यूनान के लोग आये और उन पर उन्हों ने हुकूमत की। इरान के लोगों ने उनपर प्रभुता जमाई। दुनिया के सब हिस्सों से लोग आये और उन्हें धमकाया।

वे अपने कसूरों के मँहगे दाम दे चुके हैं। अब यह समय है कि आप जाकर उन्हें ढाढ़स दें, अब समय है कि आप जाकर उनका दिल बढ़ावें, अब समय है कि आप जाकर उनका वेदान्त-बिरुद्ध अज्ञान दूर करें जिसके कारण वे जाति-भेद की प्रथा से चिपटे हुए हैं।

जाति-भेद की इस कल्पना के कारण कैसे बुरे और शोचनीय ढँग से उनकी शक्तियां क्षीण होती हैं और उद्योग नष्ट होता है। दलबन्दी की भावना से सब व्योपार—आचार सम्बन्धी, आध्यात्मिक, राजनैतिक, सामाजिक—भ्रष्ट और बरबाद हो गये हैं। भारत की यह जाति-भेद—प्रथा बिरोध और जातिगत बिद्वेष पैदा करती है। कल्पना कीजिये कि एक आदमी दर्शन-शास्त्र पढ़ता है या इतिहास अथवा कोई विज्ञान-शास्त्र का अध्ययन करता है। यदि उसका चित्त उद्विग्न है तो वह अपना अध्ययन क़ायम रखने में असमर्थ होगा। हमारे शिक्षा प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि हमारा चित्त निश्चिन्त हो। वह कौन सी बस्तु है जो लोगों को बिचालित कर देती है? क्योंकर वे व्यग्र और डांवा-डोल होते हैं। भेद-बुद्धि से। जब तुम सजातीय (हमखयाल) लोगों के साथ होते हो, तब कोई भेद नहीं होता, तब तुम्हारे समीप कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं होता; तब तुम सफलता पूर्वक पढ़ सकते हो; किन्तु जब बिरोधी तत्त्वों, विपरीत मात्राओं से, तुम घिरे हुए हो, तब तुम कुछ नहीं कर सकते, तब तुम पढ़ नहीं सकते। ज़रा खयाल कीजिये। यदि मेरे कुटुम्बी, मेरे भाई बहनें और दूसरे सम्बन्धी मेरे आस-पास हैं, तो मैं पढ़नेमें लगा रह सकता हूँ, मेरे काममें बिघ्न न होगा। जब कोई ऐसा तत्त्व आजाता है, ऐसा तत्त्व जो विजातीय समझा जाता है, ऐसा तत्त्व जो ग़ैर माना जाता है, जो मेरे चित्त में

क्षोभ उत्पन्न करता है, तभी मैं खिन्न होता हूँ। भारत की यह जातिय प्रथा, आस-पास के पदार्थों को विजातीय बना देने के कारण, बुद्धि की शक्तियों को हानि पहुँचाती है, और लोगों को यह विश्वास कराके "कि हमारे आस-पास के स्त्री पुरुष सभी ग़ैर, विदेशी, और भिन्न हैं", तथा प्रति द्वेषिता, ईर्ष्या और फूट की भावना पैदा करके, चित्त में अशान्ति उत्पन्न करती है। चार तो बड़ी जातियां हैं, और ये चारों सैकड़ों उपजातियों में विभक्त हैं. और लक्षण या कुलक्षण ये हैं कि ये संख्या अनन्त होती जा रही है। इसके साथ ही मुसलमानी एक दल या जाति है, इसाइयत दूसरा बढ़ता हुआ दल या जाति है। थियासोफी (Theosophy), आर्यसमाज और हजारों दूसरी नई (बरसाती मच्छरों के समान बढ़ती हुई सभायें, जिनके चटकीले नाम और उपाधियां हैं, नव प्रवर्तित जातियां हैं। एक मुसलमान के आ जाने पर हिन्दु विद्यार्थी की स्थिरता भङ्ग होजाती है, यदि घटनास्थल पर एक ईसाई पहुँच गया, तो हिन्दु विचालित हो जाता है और यदि, मान लीजिये कोई भिन्न जाति का हिन्दू आ गया तो उसकी मौजूदगी भी कट्टर हिन्दु विद्यार्थी के चित्त को अपने छाया से छा लती है।

क्या तुम यह नहीं देखते कि ये जाति-प्रथा और यह भेद, जिसकी भारत में अति हो गई है, उनकी बुद्धिकी शक्तियों की यथोचित उन्नति नहीं होने देता? इसके मारे वे अपनी शिक्षा पूरी पूरी नहीं कर पाते। इस तरह भारत में हमारे शिक्षा के काम के अभ्युदय के लिए हमें लोगों को एसी दशामें लाने का प्रयत्न करना चाहिए, जिसमें उनके चित शान्त रह सकें। और उनके चित्त तभी निश्चिन्त हो सकते हैं जब यह अस्वाभाविक (unnatural) भेद मिट जाय

और जब जाति-भेद की भावना दूर कर दी जाय।

राम यह नहीं कहता कि आप अमेरिकावाले जाति से बिलकुल मुक्त हैं। आप मुक्त नहीं हैं। यदि आप ईसाई हैं और आप एक हिन्दू या बौद्ध को नहीं देख सकते, तो यह क्या है? यही जाति है। यदि आप अमेरिकावासी हैं और आप एक स्पेनवासी या अंग्रेज़ को नहीं देख सकते, तो आप राजनैतिक जाति से पीड़ित हैं यदि आप गोरे आदमी हैं और एक हबशी के साथ एक ही कमरे में आप काम नहीं कर सकते, तो सामाजिक जाति का भूत आप पर सवार है। आप जाति से बिलकुल मुक्त नहीं हैं, यदि आप को अपने पड़ोसी या प्रतिद्वंद्वी से ईर्ष्या है। ईर्ष्या क्यों होती है? जाति, केवल जाति ही मत्सर का कारण है। यदि आप अपने साथी की प्रशंसा अपने सामने होते नहीं सह सकते, तो आप जाति-पीड़ित हैं। अमेरिका में बहुत करके सर्वशक्तिमान रुपया जातिका निर्णय करता है। अमेरिका में अनेक सामाजिक दोष हैं। अमेरिका को अपनी आँख का टेंटर (तिनका) निकालने की ज़रूरत है। अमेरिका को सुधार की ज़रूरत है। अमेरिका की सामाजिक पद्धति कदापि सर्वांग-सुन्दर नहीं है। अमेरिका को वेदान्त की भावना की अत्यन्त ज़रूरत है। किन्तु भारत की दशा कई गुणा अति खराब है। अमेरिका की जाति चल, कोमल, लचीली (pliable) है, जैसी हरेक जीवित वस्तु दुनिया में होनी चाहिए। किन्तु भारतीय समाज बिगड़ी घड़ी के तुल्य है, जकड़ी हैं, हड्डीवत हड़ीली है, अमेरिका के शहरों के निरस [illegible] में रक्खे हुए मोम के पुतलों की भाँति अचल-मुख और अडोल-वस्त्र है। वंशपरम्परा-क्रम और अनुकूलता कालानुवर्तन) या शिक्षा के सिद्धान्तों (principles of heredity and adaptation or

education) पर जीवन विकसित होता है। (जीवन के) निम्नतर वर्गोंमें वंशपरम्परा-क्रम का नियम (principle of heredity) सर्वप्रधान है। मनुष्य अपनी शारीरिक शक्तियों और अंगों के लिये परम्परा-क्रम के सिद्धान्त का ऋणी है, किन्तु मनुष्य उन्नति करके अपनी अत्यन्त विशुद्ध, पूर्ण विकसित और पूर्णावस्था को प्राप्त हो जाता है, विशेषतः कालानुवर्तन (adaptation) और शिक्षा के द्वारा। मुर्गी के बच्चे जब अंडों से निकलते हैं, तब उनमें उनके माता-पिता की सारी समझ पाई जाती है। कुछ पक्षी पैदा होते ही अपने पुरखों की तरह मक्खियों को चोंच से पकड़ने लगते हैं। वे अपनी प्रायः सब शक्तियां अपने माता-पिता से प्राप्त करते हैं, और यथार्थ में उनकी वृद्धि तथा उन्नति का अन्त भी उसी में हो जाता है। इसके विपरीत मनुष्य का उत्कर्ष होता है, मुख्यतः कालानुवर्तन (अनुकूलता) और शिक्षा के द्वारा। सुन्दर नन्हा शिशु उतना ही नासमझ और अनाड़ी होता है जितना कि दुधमुंहा पिल्ला, बल्कि पिल्ला या कुत्ते का बच्चा कुछ बातों में नन्हे आदमी की अपेक्षा अधिक चतुर होता है। किन्तु मनुष्य और पशु में बड़ा भेद यह है कि पिल्ले या कुत्ते के बच्चे को अपनी पूर्णता के लिए जिन चीज़ों की ज़रूरत है वे सब उसे वंशपरम्परा के कानून के अनुसार प्राप्त हो जाती हैं, और मानव-शिशु शिक्षा और अनुकूलता (adaptation:-आवश्यकतानुसार परिवर्तन) के द्वारा सारे संसार पर हुकूमत कर लेता या कर सकता है। हिन्दुओं ने भारी भूल यह की है कि शिक्षा और कालानुवर्तन के कानून के गुण से मनुष्य को वञ्चित कर दिया है, और वंशपरम्परा-क्रम द्वारा प्राप्त शक्तियों को विकसित और उन्नत करने से उसे इस प्रकार बाध्य किया है के

हिन्दू समाज पर वंशपरम्परा-क्रम का सिद्धान्त इस दर्जे तक काम करता है, कि नर-नारी पशुओं और वृक्षों की श्रेणी में आ गये हैं। कार्यतः वे आत्मा की अनन्त शक्तियों में नहीं विश्वास करते। वे नहीं विश्वास करते कि शूद्र शिक्षा के द्वारा ब्राह्मणत्व को प्राप्त कराया जासकता है। वे शूद्र के लड़के को शूद्र और वैश्य के पुत्र को वैश्य ही बनाये रक्खेंगे, क्योंकि, उनके कथनानुसार, अंजीर का पेड़ अंजीर ही के बीज पैदा करता है,और कुत्ता केवल कुत्ते को जन सकता है। यह उनकी बहस है और इसे वे, नित्यप्रति के तथ्यों के दाँतों बीच (अर्थात् इतने २ प्रत्यक्ष वा स्पष्ट प्रमाणों वा उदाहरणों के सामने), जो साफ साफ और सरलता से उन्हें झूठा सिद्ध करते हैं, पुष्ट करते रहते हैं। पूर्वकाल के उत्कृष्ट विचारवानों या महामान्य ऋषियों और विचक्षण तत्वज्ञानियों तथा सिद्धों के पुत्र—निस्सन्देह सब ब्राह्मण ऐसे ही हैं—क्या अधिकांश पागल नहीं तो शिक्षा और उत्कर्ष के अभाव से खल वा मूढ़ नहीं होगये हैं? और अपेक्षाकृत असभ्य तथा क्रूर व अनुन्नत लोगों की सन्तति, जैसे कि अंग्रेज़ और अधिकांश दूसरे यूरोपीय हैं, क्या, शिक्षा के प्रभाव और कठोर स्वच्छन्द श्रम से, शारीरिक मानसिक और राजनैतिक शक्तियों के शिखर पर नहीं पहुँच गई हैं? ईश्वर किसी व्यक्ति, रोब या जाति का आदर नहीं करता। जो श्रम करता है वह विजय व श्री से विभूषित होता है। जो अपने को शिक्षित करता है और ज्ञान लाभ करता है,वही मैदान जीतता और गौरव पाता है।

राम यह नहीं कहता है कि तुम जाति-भेद से बिलकुल मुक्त हो। किन्तु भारतीय तुम से अधिक जाति भेद से पीड़ित हैं। बहुतेरे भारत वासियों की अपेक्षा तुम अपने को

अधिक सरलता से चंगा कर सकते हो। तुम कुछ बातों में हिन्दुस्तानियों से राम के अधिक नगीची हो। राम चाहता है कि स्वाधीनता के इस भाव को तुम अपने में अधिक बलवान करो, इसे धौंकते रहो, इसे बढ़ाओ और विस्तृत करो, इसे अधिकाधिक तरक्की दो और भारतवासियों में स्वाधीनता की यह भावना जगा दो, और उन्हें अपने इस सुख और सौभाग्य का सांझी बना दो। इस प्रकार से दोष की जड़ (मूल) में हम प्रहार कर सकते हैं। द्वैत के द्वारा, इस भेद के द्वारा, जो वेदान्त का वैरी है, जो वेदान्त का प्रतिकूल ध्रुव (pole) है, लोग शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक आत्मघात करते हैं।

इस रोग के सम्बन्ध कुछ शब्द और हैं। ब्राह्मण वर्ग, उच्च वर्ग, शारीरिक श्रम करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझता है। उच्च श्रेणी के लोग ऐसे किसी काम में अपना हाथ न लगने देंगे जिसे रीति-रिवाज या व्यवहार ने उन की मान-मर्यादा के अनुकूल नहीं ठहराया है। मिसाल के लिए, एक ब्राह्मण, क्षत्री या वैश्य-तीन ऊँची जातियां-चमार, नाऊ, मल्लाह, लोहार, रंगरेज, दर्जी, बढ़ई, जोलाहा, कुम्हार, रंगसाज़ या मामूली मजूर का काम, मेहतर के काम का तो ज़िक्र ही बेकार है, कदापि, कदापि न करेगा। यह लोग मर जाना पसन्द करेंगे, पर ऐसा काम न छुएँगे। वे चमड़े या खाल का व्योपार कभी न करेंगे। अब यदि ऊँची जातियां जिनके पास कुछ पूँजी है, इन व्यापारों को नहीं कर सकतीं और केवल नीचतम वर्ण के लिए, जिस के पास कुछ भी रुपया नहीं,है, इन व्यापारों को पूरी तरह से छोड़ देना है, तो बताइये, भारत के उद्योग-धन्धों और कलाकौशलों की उन्नति कैसे होगी? उपयोगी कारीगरियों में वे कोई

तरक्की कैसे कर सकते हैं? अमेरिका आज अपने उद्योग-धंधों की बदौलत धनी है। इङ्गलैंड और अन्य यूरोपीय राष्ट्र अपने उद्योग-धंधों की बदौलत आज धनवान हैं। (अमेरिका और यूरोपीय देशों में) पूँजी वाले लोग इन उद्योग-धंधों को करते हैं। उसे क़ौम के लिए क्या आशा हो सकती है जिस के तीन-चौथाई से अधिक लोग उद्योग-धंधों को तुच्छ समझते और श्रेष्ठ कर्म से घृणा करते हैं, और गत व्यवसायों तथा रीति-रस्म के ठूंठ में लता की तरह लिपटे रहने को धर्म कहते हैं।

गुलाम की तरह भूत पूर्व (अतीत) काल में चिपटे रहने, और केवल मुर्दों की आँखों से देखने का स्वाभाविक नतीजा यह है कि हिन्दुस्तान में और भी अनेक दोषों का, जिन के बयान की इस समय ज़रूरत नहीं है, दौर-दौरा है। गये गुज़रे ज़माने की दुःखद रीतियों का ऐसा ठोस बोझ जब तक उनके सिर पर लदा है, तब तक उन से क्या आशा की जा सकती है? अपने पूर्वजों की एड़ियों के बल्कि केवल उनके नामों के भार के नीचे दबे रहने के स्थान में, उनके कंधों पर खड़े होने में, ऐ अमेरिका वासियो! उन (भारतवासियों) की सहायता करो। आज तो उन (भारत वासियों) का श्रेष्ठ उत्तराधिकार ही उनका भोक्ता और प्रभु है। इसके बदले में उन्हें उस का भोक्ता और स्वामी बनने में सहायता पहुँचाओ। ऐसा करो कि उनका उत्तराधिकार उनकी वस्तु बने, न कि वे अपने उत्तराधिकार की वस्तु बने रहें। उनकी सामाजिक रीतियों और घरू-ढँगों में निस्सन्देह कुछ प्रशंसा के योग्य पहलू और आशाजनक लक्षण भी हैं, किन्तु उन ढँगों और रीतियों का अन्धा धुंध पालन उन्हें निस्सार और निर्जीव बना देता है।

भारत में पन्द्रह करोड़ स्त्रियों में से (यह संख्या अमेरिका की समग्र आबादी से दूनी है) कठिनता से सैकड़ा पीछे एक स्त्री अपना नाम लिख सकती है। ऐसी दशा भावी सन्तति में अति निकृष्ट अन्ध विश्वास और दीनता (कायरता) के सञ्चार करने में क्यों प्रवृत्त न होगी?

उपनिषदों और महापरतापी (तेजस्वी) वेदान्त की शिक्षाओं का स्थान एक प्रकार के रसोई-धर्म ने, अर्थात् भोजन और भोजन करने के तरीकों निमित अनुचित ध्यान ने, ले लिया है। कुछ सर्व श्रेष्ठ कट्टर विद्वानों (पण्डितों) की विद्या का क्षेत्र पुरानी संस्कृत (जो अब कहीं नहीं बोली जाती) के व्याकरण सम्बन्धी नियमों की यांत्रिक पारदर्शिता (mechanical mastery) से आगे नहीं बढ़ता। रटना और पुराने ग्रन्थों के मन्त्रों का उदाहरण देना आपको यहां समस्त मौलिक चिन्तकों (original thinkers) और स्वच्छन्द तार्किकों से श्रेष्ठ बना देता है। अपने संगियों की अशील रसिकता (वा मज़ाक) को तृप्त करने के लिए यदि आप वैदिक मन्त्रों को तोड़ और मरोड़ सकते हैं, तो आप बहुत बड़े विद्यानिधान हैं। अनेक युवकों की मानसिक शक्तियां "हाथ-पैर धोने के समय मनुष्य को कितनी बार कुल्ला करना चाहिये" इस प्रकार के जटिल प्रश्नों पर शास्त्रार्थ और तर्क-वितर्क करने में नष्ट और निछावर हुआ करती हैं।

तंग साम्प्रदायिक घेरों के अन्दर खूब घिरे रहने और ग्रन्थ-प्रमाण पर अत्यन्त भरोसा रखने ने उन्हें ज्ञानशून्य पक्षपातकी ऐसी गहराई में डुबो दिया है कि बिलकुल क्षुद्र वस्तुयें और निरर्थक चिह्न बड़े गहरे भावों के केन्द्र हो गये हैं। भारत के लोकप्रिय धर्म में गौ के लिये पराकाष्ठा का सम्मान आज अत्यन्त भारी और परम गम्भीर बात है। हिन्दू धर्म के कुछ

दल एक दूसरे से इतनी दूर छिटके हुए हैं जैसे ध्रुव, किन्तु गौ के लिए अतिशय आदर सब सम्प्रदायों में एकसाँ है। गौ की देह की पवित्रता सामान्य रूप से हिन्दू की अत्यन्त प्रिय और निकटतम भावना और दुलारी सनक है। इस विषय को स्पर्श करके आप तुरन्त हिन्दू की गम्भीरतम चित्त-वृत्ति और महाभयंकर रोष को उत्तेजित कर सकते हैं। यह मार्मिक प्रश्न नित्य अगणित (असंख्य) झगड़ों और बखेड़ों का कारण हुआ करता है। सन १८५७ का महा विप्लव (mutiny) गौ के नाम में किया गया था। कहा जाता है कि हिन्दू के इस प्रिय अन्धविश्वास से लाभ उठा कर मुसलमानों की पहली भारत-विजय हुई थी। मुहम्मद गोरी ने पहली बार जब भारत पर चढ़ाई की थी तब वीर हिन्दू राजपूतों ने उसे मार भगाया था। किन्तु उसने पलट कर फिर भारत पर चढ़ाई की। इस बार उसे हिन्दू हृदय की तरंगों तथा व्यसनों का बहुत अधिक ज्ञान था। कहा जाता है कि उसने अपनी सेना के चारों ओर गौओं की क़तारों का घेरा बनाया था। कैसा विचित्र आश्रय (आलम्ब) था? हिन्दू आक्रमण नहीं कर सके। पवित्र गौ पर वे कैसे हथियार उठा सकते थे? पवित्र मृदुल गौओं को देख कर दयालु हिन्दू हिचक गया, उन पर उसने वार न किया, किन्तु देश खो दिया। और परिणाम यह हुआ कि कई सदियों तक और आज भी निर्दयी विजेताओं के द्वारा उसने हज़ारों, नहीं, नहीं, लाखों और करोड़ों गौओं का वध और भक्षण होने की पीड़ा भोगी और भोग रहा है। यह कहानी चाहे झूठी हो, किन्तु ऐसी विलक्षण घटना आज भी सम्भव है। प्राचीन धर्म के नाम में ऐसा घोर अज्ञान फैला हुआ है*। ....

*इस स्थल पर स्वामी जी ने यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्य-

अरे, वेदान्तकी वह बेझिझक निर्भयता (शौर्य) कहाँ है, जिसका कृष्ण ने एक बार प्रचार किया था, जो, गौओं, चीटियों और अंजीर के वृक्षों के शरीरों पर हमारी पवित्र भावनाओं को नष्ट करने के बदले, हमें न केवल उस तुच्छ शरीर की, जिसे हम "मेरा अपना" कहते हैं, कातर (दीन) सेवा से ही मुक्त करता है, बल्कि जो हमें उस सम्पूर्ण निर्बल कारी अविद्या से भी बचाता है जिसके कारण हम पिता, चाचाओं, बाबा, शिक्षकों और सब नातेदारों के शरीरों को अनुचित महत्व प्रदान करते हैं। आवश्यकता है उस आनन्दमय वेदान्त की, जो अविनाशी तत्व व सत्यात्मा का, इस सीमा तक अनुभव कराता है कि यदि सकल सूर्य विनष्ट कर दिये जाँय और कोटियों संसारों का प्रलय कर दिया जाय, तो भी ज्ञाता विचलित नहीं होता।

वे प्रबल बुद्धिवाले हैं, वे प्रबल शरीर वाले हैं, अध्यात्म में भी वे प्रबल हैं। जल गणित वा जल स्थिति विद्या (Hydro-statics) में आप ने "परिणामभूत दबाव" (रिज़ल्टैंट प्रैशर-resultant pressure) और "समग्र दबाव" (टोटल पैशर-total pressure) के बारे में पढ़ा होगा। किसी शरीर पर कुल दबाव चाहे बहुत, अत्यन्त अधिक व आश्चर्य जनक हो, किन्तु परिणामभूत दबाव शून्य हो सकता है, अर्थात् लब्ध दबाव कुछ भी नहीं हो सकता है। भारत में त्रिपुल कोटि मनुष्यों की महान शक्तियां साथ मिलकर काम नहीं करतीं, परस्पर सहयोग नहीं करतीं, एक शक्ति दूसरी को

कोपनिषद, छटा अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मणान्तरगत गो-मेध की आज्ञा का उदाहरण दिया है, जिस के गलत समझे जाने की संभावना देख कर उसे जान बूझ कर यहां नहीं दिया गया। (सम्पादक)

व्यर्थ कर देती है, एक शक्ति दूसरी शक्ति के भार को बराबर कर देती है, और फलतः परिणामभूत राष्ट्रीय शक्ति कुछ भी नहीं है बाहरी रीतियों और रूपों में प्रीति के मूढ़ विश्वास मूलक केन्द्र बना लेने से, रस्मों और वाह्य शरीरों में भावनाओं की अन्धी नाभी (केन्द्र) बना लेने से, और देखने मात्र रूपों वा आकारों की सत्यता तथा परिस्थितियों की कठोरतामें मूढ़ अचल विश्वासजमाने से जाति-विद्वेष, साम्प्रदायिकता, दलबन्दी की वृत्ति और जाति के भाव इस दर्जे पर पहुँच गये हैं कि लोग अपनी मर्ज़ियों को एक साथ नहीं जुटा सकते, और वह चमत्कार पूर्ण फलोपधायकता शक्ति (Dynamic force) नहीं पैदा कर सकते कि जो वाह्य भेदों के होते हुए भी, भीतर की एकता और अभिन्नता के व्यावहारिक अनुभव से सदा एक राष्ट्र को मिलती है। और जनसमूह में व्यवहृत (अमली) वेदान्त के इस अभाव ने भारत को भीतर के भेदों से परस्पर फूटभरा घर बना दिया है। अनेक दलों में बड़ी टूटा-फूटी है।

भारत का यह कलंक (वा विनाश-हेतु) है, और राम यह नहीं छिपाना चाहता कि अंग्रेज़ी सरकार इस भेद-भाव को बढ़ाती है। शासकों की यह "आपस में लड़ाकर जीतने" की नीति (The "Divide and Conquer" policy) हिन्दू और मुसलमानों के बीच के भेद की खाँई (gulf) को चौड़ा करती है, और इसी तरह हिन्दुओं के विभिन्न सम्प्रदायों के बीच में भी। यदि भारत की किसी तरह की भी—राजनैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, अथवा किसी प्रकार की भी—रक्षा करनी है तो उसी प्रकार के उत्कर्ष के द्वारा हो सकती है कि जो भेद और फूट को दूर कर, जो जाति-भेद की खोपड़ी पर ठोकर लगाय, और जो ईर्ष्या और

सुस्ती को मार्मिक चोट मारे। यदि हम चाहत हैं कि भारत उठ खड़ा हो, फिर जिये, दूसरे राष्ट्रों के मुक़ाबले में बाज़ी मार सके, और इंग्लैंड, अमेरिका तथा समग्र संसार के लिए कल्याण का हेतु बने, तो इन दोषों को भारत से निर्मूल करना होगा। यदि कोई आदमी बीमार है तो केवल वही दवा देकर हम उसे चंगा कर सकते हैं जो उसकी आन्तरिक प्रकृति को सहायता पहुँचावे और बल दे। भीतरी प्रकृति ही हमें नीरोग करती है, दवाइयां तो बाहरी सहायता मात्र हैं। वे प्रकृति को सहायता पहुँचाती हैं और प्रकृति स्वयं चगां करती है। इसी तरह, यदि भारत को फिर स्वस्थ करना है, तो तुम्हें कोई ऐसी बस्तु उसे देनी होगी जो उसके आन्तरिक जीवन-तत्व को बलवान बना दे, जो उसकी भीतरी प्रकृति को अनुप्राणित और शक्तिमान् कर दे।

भारतका रोग और कठिनाइयां आप को बता दी गईं। अब हम उन विभिन्न औषधियों का विचार करेंगे जो रोग-निवारण के लिए बताई गई हैं।

संसार समझता है, बहुत से धर्म-मतों का विश्वास है, और आचारोपदेशक (moralists) प्रत्यक्ष पुष्ट करते हैं, कि उपदेश और नियम इन दोषों को दूर कर देंगे। कदापि नहीं ! कदापि नहीं !! कदापि नहीं !!! शास्त्रोपदेश, विहित कर्म वा अवश्यमेव पालनीय सिद्धान्त, आचरण के कृत्रिम नियम और अस्वाभाविक सदाचार कभी दोषों को दूर न करेंगे। याद रक्खो कि, "तू यह न कर" और "तू वह कर" से कभी कोई सुधार न होगा। यदि ये नियम और नेक सलाहें दोषों को सुधार सकतीं, तो प्रतिज्ञात (promised, इक़रार किया हुआ) "ईश्वर का साम्राज्य" बहुत पहले स्थापित हो गया होता, संसार स्वर्ग बन गया होता, और आज कासा

संसार न रह जाता। इन से दोष न दूर होंगे। तुम्हारी सज़ा, तुम्हारे जेलखाने और कारागार सुधार न कर सकेंगे। आज चाहे कल संसार को अनुभव करना पड़ेगा, कि जेलखानों और कारागारों के गुण और सामर्थ्य में विश्वास करना भयंकर भूल है। धमकियों और दण्ड ने पाप को कभी नहीं रोका। दोषों को अमोघ रीति पर दूर करने के लिए आप को विद्या, ज्ञान, उत्कर्ष, सजीव विद्या का सञ्चार करना होगा। इस बात की ज़रूरत है। लोग कहते हैं "सूक्ष्म युक्तियों या अति सूक्ष्मताओं से हमें परेशान न करो", अब हमें केवल युक्तियां वा कल्पनायें नहीं चाहिएं। ऐ लोगो! तुम पर शासन कौन करता है? संसार का नियन्ता कौन है? कल्पना, विचार, केवल भावना वा विचार। आप का भीतरी प्रकाश, आपका भीतरी ज्ञान ही, और कुछ नहीं, आप को मार्ग दिखाता है। जेलखाने और कारागार रखने के बदले आपको अपराधियों को शिक्षा देनी होगी, उन्हें संसार का शासन करने वाले दैवी—विधानों वा दिव्य नियमों का ज्ञान और परिचय कराना होगा। कहा गया है, "ज्ञान ही नेकी है" (Knowledge is virtue), यह बिलकुल सत्य है। यह एक बच्चा है। आग को छू कर बच्चा अपनी अँगुली जला लेता है। क्यों? क्योंकि लड़का यह नहीं जानता कि आग जला देती है। आग जलाती है, इस सत्य से बच्चे को परिचित कर दो, फिर वह कभी अग्नि को न छुएगा। लोगों का आध्यात्मिक नियमों से परिचय करा दो, मानव जाति को प्रकाश में लाओ। यह दवा है। यह तरीका धीमा, घोंघे का सा सुस्त, भले ही हो, किन्तु है यह निश्चित। यह अति मन्द, आलस्य शील भले ही हो, किन्तु, है यह एक मात्र औषधि, एक मात्र अमोघ चिकित्सा। दूसरा कोई और

उपाय नहीं है। इस तरह, ईसाई-आचार की नीति से, दराडों और नियमों या विधानों से भारत कदापि नहीं उठाया जा सकता। केवल "सत्य" के "जीते-जागते" ज्ञान की ज़रूरत है।

अमेरिकनों और अंग्रेज़ों के घर बड़े सुन्दर हैं। और इसमें सन्देह नहीं कि भारतवासियों के घर बड़े ही दीन हैं, किन्तु भारत में अच्छे, सुन्दर, भड़कीले महल बनाने से, और भारतवासियों को यूरोपियों के से केवल गरम-घरों के पौधे बनाने से, कोई उन्नति न होगी। बहुतेरे मामलों में मकानों के राज-भवन और प्रसादवत् होने पर भी, उनके रहनेवाले सुखी नहीं होते। कीड़े, मकोड़े साँप, प्रायः सुन्दर क़ब्रों में रहते हैं। चाहे यह नियम न हो, किन्तु काफी गवाहियों से यह ज़ाहिर होता है कि बाहरी चमक-दमक और महिमा से सुख नहीं मिल जाता है। यह एक तथ्य है। यदि संसार इतना अनुभव नहीं करता, तो संसार का दोष है। दौलत से दोष न दूर होंगे। राम वेदान्त को उड़ाता है, ऐसी बातें कहता है, जिनसे प्रत्येक व्यक्ति का लालसा–रञ्जन नहीं होता, जो हरेक की आशाओं के अनुकूल नहीं होतीं, किन्तु यह तथ्य है कि धन-दौलत से कोई सुख न मिलेगा। यदि यूरोप, अमेरिका दौलत के पीछे पड़े हुए हैं और उसे सुखका साधन समझ रहे हैं, तो यूरोप और अमेरिका भयंकर भूल कर रहे हैं। राम की सिफारिश यह नहीं है कि हिन्दुस्तानी यूरोप और अमेरिका की भूलों की नकल करके आगे बढ़ें। भौतिक समृद्धि उसे कभी नहीं मिली, जिसने भौतिक समृद्धि के ही लिए उसका पीछा किया। कौन राष्ट्र या व्यक्ति ऐसा है जो सारे विश्व की द्रव्य को बटोरना नहीं चाहता, किन्तु ऐसे बहुत कम हैं जिनकी यह कामना पूरी

होती है। विभूति वा वैभव सदा श्रम और प्रेम या निस्स्वार्थ प्रेम की रेखा के पीछे पीछे चलता है। वही राष्ट्र उन्नति करते हैं जिनके पास जान-बूझ कर या बेजाने सफलता की यह महा-चाभी—व्यावहारिक वेदान्त की भावना—अधिकांश में होती हैं। अज्ञानी मूर्ख पेड़ों को पालते तो नहीं, किन्तु उनके फल खाने को उत्सुक रहते हैं। झूठ राजनीतिज्ञ शक्ति के मुख्य तार, अर्थात् स्वाधीनता और प्रेम की भावना को बिना बनाये ही राष्ट्र का उत्थान करने का विचार करते हैं। प्रत्येक राष्ट्र का अनजाने, और भारत का समझा-बूझा, जीवन-तत्व व्यावहारिक वेदान्त, स्वाधीनता, न्याय और प्रेम की वृत्ति है। भारतका यह आन्तरिक स्वभाव प्रबल किया जाना चाहिए। हरेक देशका घरू, सामाजिक, राजनैतिक या धार्मिक उद्धार अमल में लाये गए वेदान्त में है।

भारत की एक खास विशेषता है। यद्यपि हिन्दू यथार्थ में अति-धार्मिक नहीं हैं, तथापि धर्म के प्रति उनका आदर और उत्साह इतना अधिक है कि बिना धर्म का नाम लिए, किसी भी चीज़ को, वह सामाजिक, धार्मिक या किसी प्रकार की भी हो, तुम उनमें लोकप्रिय और व्यापक नहीं बना सकते। भारतीय राष्ट्रीय महासभा या दूसरी कोई संस्था या संगठन, जिसका लक्ष्य सामाजिक या राजनैतिक सुधार है, जनता को स्पर्श और उनकी अन्तरात्मा को प्रभावित नहीं कर सकता, धर्म के मार्ग से न आने के कारण। यह दशा होने से, भारत में सब प्रकार के सुधारों का प्रवर्तन करने के लिए वेदान्त से बढ़कर प्रभावशाली कोई और तरीका हो ही नहीं सकता जो राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक, घरेलू, बुद्धि-विषयक और, सदाचारिक वा नैतिक स्वाधीनता तथा प्रेमका आलिंगन करता है, जो

अद्भुत रूप से स्वाधीनता और शान्ति, उद्योग और स्थिरता, वीरता और प्रेम की एकता करता है; और यह वेदान्त सब कुछ करता है धर्म के नाम में, धर्म-ग्रन्थों (श्रुती, उपनिषद्) के नाममें—हिन्दू-हृदय का जिससे अधिक नगीची कोई और नहीं है—वेदों के नाम में, जिससे अधिक मान्य हिन्दू के लिए और कोई नहीं है, जिसके लिए बड़ी तत्परता से हिन्दू अपनी जान देसकता है। पुनः स्वाधीनता और प्रेम की इस भावनाको हिन्दुओं की इंजील रूप उपनिषदों से, वचनों को तोड़-मरोड़ कर नहीं निकालना पड़ेगा, यह उनमें बहुत साफ तौर पर पाई जाती है। वेदान्त जनसाधारण के मर्म को स्पर्श करता है, क्योंकि यह उनकी इंजील की शिक्षा है, और शिक्षित हिन्दू के हृदय को वह प्रभावित करता है, क्योंकि अखिल विश्व में नाम लेने के योग्य ऐसा कोई तत्वज्ञान नहीं है जो वेदान्तिक अद्वैतवाद का समर्थन न करता हो, और न कोई ऐसा (पदार्थ) विज्ञान है जो वेदान्त या "सत्य"के पक्ष को पुष्ट और अग्रसर न करता हो।

आश्चर्य की बात है, जिन भारतवासियों के धर्म-ग्रन्थों में वेदान्त के सदा हरे-भरे चश्मे मौजूद हैं, वे भारतीय टंटालुस (Lantalus) * की तरह पीड़ा पा रहे हैं, वे इन

---

* टंटालस एक बादशाह का नाम है। इसको यह दण्ड मिला था कि पानी में इसे जकडा गया इसके सिर पर एक अति मधुर और स्वादिष्ट फल इतनी दूरी पर लटका दिया था जिस से वह उसे पकड तो नहीं सकता था और न अपनी तृप्ति कर सकता था बल्कि उसे देख २ कर केवल तरसता रहता था।

टंटालस चातक पक्षी को भी कहते हैं कि जो वर्षा में जल बिंदु के लिये व्याकुल रहता है, पर अगणित बिन्दुओं के होते हुए भी अत्यन्त कठिनता से एक बिन्दु कभी पाता है, या तरसता २ मर जाता।

चश्मों का जल नहीं पीते। ठीक इसी तरह बहुत समय तक जैसे रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाई इंजील, जो उन की संसार में अत्यन्त प्रिय वस्तु थी, उस के भयङ्कर अज्ञान से कष्ट पाते रहे। भारत में कुछ लोग ऐसे हैं, यद्यपि अधिक नहीं, जिन्हें वेदान्त का पूर्ण ज्ञान है। किन्तु उन का ज्ञान काल्पनिक वा अव्यावहारिक है। वे उस विद्यार्थी के समान हैं जिस को जरब (गुणन) और तकसीम (विभाग) के नियम ज़बानी याद हैं, किन्तु जिसने गुण या विभाग के एक भी सवाल को लगानेमें उन नियमों का प्रयोग नहीं किया है। अधिकांश पण्डित, रसायन विद्या के फर्ज़ी विद्यार्थी की तरह, कि जो एक भी प्रयोग नहीं करता, वेदान्त को पढ़ते हैं। अधिकांश सन्यासी, स्वामी या प्रभु होने के बदले, स्वयं जाति और रूप के दासों और गुलामों से बढ़ कर नहीं हैं। निस्सन्देह वेदान्त के अध्यापक बहु संख्या में भारत में आप को मिलेंगे, किन्तु उन में से अधिकांश विश्वविद्यालयके जल वेग गणित-विद्या के उस अध्यापक के समान हैं, कि जो गुब्बारों के चढ़ने, जहाज़ों के खेने, तैरने के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में शिक्षा तो देता है, पर आप कभी उथला उतारा मंझा कर भी (थोड़े से पानी वाली नदी के भी) पार नहीं गया है। तुम लोग अमेरिका वाले चाहे जल-गणित के अध्यापक नहीं हो, किन्तु तुम उस असली मल्लाह के तुल्य हो, जो जल-गणित का तात्त्विक ज्ञान रखने का मान या गुमान तो नहीं करता किन्तु अनजाने उन सिद्धान्तों को अध्यापक से कहीं अधिक अमल में लाता है। इस तरह अमेरिका वालो! अपनी अमली उद्योग-शक्तियों को वेदान्त की आध्यात्मिक शक्ति से मिला कर और इस पूर्ण शिक्षा को भारत में ले जाकर, तुम भारत के पक्ष की और

अतः सारे संसार की सहायता कर सकते हो। आज तो यह दशा है कि भारत के स्वामी और पण्डित अपनी जाति की काहिल नींद को बढ़ाने के लिए लोरियां गा रहे हैं।

यह कहा जाता है कि कारीगरी के महाविद्यालयों (Industrial colleges) और संस्थाओं (Institutions) की स्थापना दोषों को सुधार देगी। क्या सच मुच? नहीं ऐसी संस्थाओं से कुछ काल के लिए भले ही चैन मिल जाय, किन्तु असली कठिनाई, मुख्य क्लेश और भारी दर्द भारत में केवल कारीगरी के महाविद्यालयों से नहीं दूर किया जा सकता। इन दिनों भारत में मजूर अपनी मेहनत के लिए क्या पाते हैं? मिसाल के लिए, कुम्हार को ले लीजिए, वह बीस बरतन प्लेट (Plates भोजन-पात्र) बनाता है। उनके बनाने में उसे बहुत समय तक मेहनत करना पड़ती है, और उसे बीस बरतनों के लिए एक टका मिलता है। बीस बरतनों के लिए एक टका! बीस बरतनों के लिये एक टका!! कुछ दूसरे काम करने वालों को सारे दिन की मेहनत के पांच टके मिलते हैं। कुछ ऊँची जाति के लोग हैं, जो महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं, उपाधियां पाते और कीर्ति के साथ, एम० ए० (साहित्य के स्वामी) बन कर, निकलते हैं। उनकी माहवारी तनख्वाह कितनी होती है? आम तौर पर साठ रुपए, अर्थात् बीस डालर से अधिक नहीं, जो दो-तिहाई डालर अर्थात् करीब करीब छासठ टके रोज़ाना हुई। किन्तु साधारण एम० ए० को इतना भी नहीं मिलता। साधारण एम० ए० (विद्यापति या साहित्य स्वामी) को प्रायः ४५ पैंतालीस ही टके एक दिन में मिलते हैं। भारत की यह दशा है। अमेरिका में तुम्हारा मामूली मजूर क्या पाता है? दो डालर (छः रुपए) प्रति दिन। अच्छा, यह

क्या बात है कि हिन्दुस्थानियों को इतना कम दिया जाता है ? उनके कपड़े-लत्ते बड़े दरिद्र होते हैं, भोजन बहुत ही दीन होता है, उनके घर बड़े ही हीन होते हैं, उनके आराम का मान(Standard) बहुत ही क्षुद्र होता है। ऐसा क्यों है ? देश में पूँजी की कमी के कारण। क्या आप नहीं देखते ? पूँजी तो मुल्क से बाहर खींची जा रही है। इस देश में अमेरिकन-भारतीयों (American Indians) के लिए कार्लिस्ल इंस्टीटयूट (Carlisle Institute) और नीगरो जाति (Negroes) के लिए टस्केगी इंस्टीटयूट (Tusekegee Institute) सरीखे कारीगरी के महाविद्यालय यदि हम हिन्दुस्थान में क़ायम करें, तो कुछ हित अवश्य होगा। लोग मेहनत और काम करना सीखेंगे। किन्तु हमारा यह परिश्रम किस की महिमा, किस की बढ़ती, किस के लाभ के लिए होगा ? कृपया बताइये ? मुख्यतः इंग्लैंड के पूँजीपतियों की महिमा बढ़ाने के लिए। भारत के सब बड़े बड़े कारखाने अंग्रेज़ सौदागरों के हाथों में हैं। भारतीय व्यापारी नाम मात्र के पूँजीपति हैं। यूरोप और अमेरिका के पूँजीपति उन्हें अपने फंदे में फँसा लेते हैं। कारीगरी के महाविद्यालयों और शिक्षा के होते हुए भी हिन्दुस्थानियों के हाथ क्या लगेगा ? क्या लोगों का लाभ होगा ? वे तो तब भी दुःख भोगते रहेंगे। उनका आहाराभाव (Starvation) और अकाल इस तरह न दूर होगा। चिरस्थायी दवा औद्योगिक महाविद्यालयों (Indusrtial Colleges) से नहीं मिलेगी। तो फिर हमें क्या चाहिए ? हमें बहुतेरी चीज़ों की ज़रूरत है। किन्तु वर्तमान समय में उच्च जातियों को, और नीच जातियोंको भी, शिक्षा देनी पहली ज़रूरत है। उन्हें सिखाओ, स्वाधीनता की भावना उनमें उतार दो और लाचित कर दो और

सत्य की निस्स्वार्थ शक्ति से उन्हें भरदो। यही आवश्यकता है। यह पूर्ण शिक्षा कला-कौशल की शिक्षा को भी लिपटा लेगी, किन्तु केवल उद्योग-धंधों से काम न चलेगा। उद्योग-धंधे तो दूसरे दर्जे की चीज़ हैं, किसी उच्चतर वस्तु की बड़ी ही सख्त ज़रूरत है।

इस समय भी भारत में बांछनीय ढरों पर शक्तियां काम कर रही हैं। उनके काम का हमें बिचार करना चाहिए। ईसाई धर्म-प्रचारक अमेरिका से जाते हैं और जी तोड़ काम वहां करते और जाति-भेद को तोड़ने की चेष्टा करते हैं, यह उनका दावा है। वे लोगों को शिक्षा देने का यत्न करते हैं, वे पारहियों, नीचतम जाति को सहायता पहुँचाने की कोशिश करते हैं। किन्तु आओ हम लोग जांच करें कि उनके दावे कहां तक सही हैं। सब से नीची जाति के हितार्थ कुछ करने के लिए भारत उनका कृतज्ञ है। वे एक हद तक महा नीच जाति के लोगों को शिक्षा दे रहे हैं, जिन को किसी दूसरी परिस्थिति में लिखना और पढ़ना सिखाना असाध्य था। अवश्य यह महान कार्य है। मिशन-धर्म-प्रचारक-दल के महा-विद्यालय और बिद्यालय ऊँची जाति के लोगों को भी उच्च-तर शिक्षा दे रहे हैं। भारतवासियों को शिक्षा देने के काम के लिए अब तक बहुत कुछ कर चुकने के लिए हम अमेरिका की धर्मप्रचारिणी संस्थाओं (American Missions) को धन्यबाद देते हैं, किन्तु इस मामले के बुरे पहलू की तरफसे हमें बेपरवाह नहीं होना चाहिए। भारतमें जानेवाले ये इसाई-धर्म-प्रचारक कमसे कम तीन सौ रुपया (हिन्दुस्थानी डालर) महीना तनख्वाह लेते हैं। वे नवाबों की तरह पूरे शाही ठाट बाट से रहते हैं, वे लोगों पर हुकूमत करते हैं, हिन्दू परि-वारों में झगड़ा और फसाद वर्पा करते हैं, और भारत की

वर्तमान अनेक जातियों में एक जाति और बढ़ा रहे हैं। जो हिन्दुस्थानी इसाई धर्म ग्रहण कर लेते हैं, वे साधारणतः दूसरे हिन्दुओं के लिए बड़े ही कटु हो जाते हैं, न वे हिन्दुओं में मिलते-जुलते हैं, और न हिन्दू उनमें मिलते-जुलते हैं। आपस के बर्ताव में बड़ा तनाव पड़ता जाता है, भेदकी खाई बहुत चौड़ी होती जाती है, और दिन बदिन बैरभाव बढ़ता ही जाता है। बेटियां माता पिताओं से, और स्त्रियां पतियों से अलग होती जाती हैं। अशिक्षित हिन्दू जनता द्वारा मान्य धर्मादेशों (Dogmas) के स्थान में इसाई धर्मके आदेशों को रखना चाहते हैं, जो और भी रद्दी हैं। इसाई दानशीलता कड़ुई छिद्रान्वेषण (Smarting Criticism) छोटे बच्चों को फुसला कर मा-बाप से छुटा देने और उनकी कोमल गर्दनों को इसाई अन्ध-बिश्वासों के जुएं के नीचे रखने के काम का रूप धारण करती है। ऐसी दशा में तुम्हारी सद्भाव युक्त ईसायत हिन्दू-हृदय में, जो एक बूंद सहानुभूति, हमदर्दी या प्रेम की भी, इस कड़ुई छिद्रान्वेषण और दलबन्दी की वृत्तिकी लूट-खसोट से शायद बची होती है, उसे भी सुखा देने और निकाल बाहर करने की प्रवृत्ति रखती है। यह है बुरा पहलू (dark side)। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस तरह मामले न सुधरेंगे। यद्यपि अति उत्तम अभिप्रायों से करोड़ों रुपया खर्च करने के लिए हम अमेरिका-वासियों के कृतज्ञ हैं, तथापि राम आप का ध्यान इस तथ्य की ओर खींचना चाहता है कि प्रस्तावित दवा (Proposed remedy) ठीक नहीं है, वह केवल रोग को बढ़ाती है।

अंग्रेज़ी सरकार के हम अनेक कारणों से कृतज्ञ हैं। अंगरेज़ी सरकार ने भारत में मूल जाति-भेद को तोड़ने के लिए बहुत कुछ किया है। अंग्रेज़ी सरकार ने भारत में शिक्षा

को उत्तेजन दिया, अंग्रेज़ी सरकार ने वहां विश्वविद्यालय और महा विद्यालय स्थापित किये। अंग्रेज़ी हुकूमत की ही बदौलत हिन्दू अपने प्राचीन धर्म ग्रन्थों को विधिपूर्वक पढ़ने में समर्थ हुए। यह अच्छा पहलू (bright side) है। अब अन्धकार वाला पहलू (dark side) लीजिए। बृटिश सरकार ने भारत का सब कुछ हर लिया है। अंग्रेज़ी सरकार ने ऊपरी (बाह्य) अल्पज्ञान (Smattering) हिन्दुस्तानियों को दिया है, किन्तु उसने भारत को हर प्रकार से निर्धन बना दिया है, और उसे ऐसी बुरी दशा में पहुँचा दिया है कि यदि सरकार के ढँग बहुत जल्दी रोके या बदले न गये, तो ग़रीबी हिन्दुओं को खा जायगी और भूतल से वे लोप हो जाँयगे। भारतीय राजा-महाराजा और भारतीय रईस अपने मूल्यवान रत्न और शक्ति खोकर अब केवल ग़लीचों पर के बने हुए शूरवीरों के चित्रों के समान हो गये हैं, और खोखली झनझनाती हुई उपाधियां तथा लम्बे-चौड़े पोले नाम उनकी सम्पत्ति रह गये हैं। अब भारत को दी जानेवाली शिक्षा के बारे में सुनिये। इन दिनों अंग्रेज़ी सरकार को जन समूह का उत्कर्ष भी खलने लगा है। जब राम भारत में था तब जनता में उच्चतर शिक्षा मात्र (higher education) का प्रचार रोकने का प्रबन्ध किया जा रहा था। अच्छा, इन विश्वविद्यालयों में क्या पढ़ाया जाता है? मुर्दा भाषा, काल्पनिक तत्वज्ञान, गणित विद्या, पिछला इतिहास, उपयोग में न लाई हुई (unapplied) रसायन विद्या, तथा ऐसेही और विषय। किसी भी विश्वविद्यालय या महाविद्यालय में अंग्रेज़ी को छोड़कर कोई जीती-जागती उपयोगी भाषा नहीं पढ़ाई जाती। लोगों को अंग्रेज़ी इस लिए पढ़ाई जाती है कि उन्हें अंग्रेज़ अफ़सरों की मातहती में काम करना पड़ता है। अंग्रेज़ लोग

देशवासियों की भाषा पढ़ने का कष्ट नहीं उठाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि लोग उनकी भाषा पढ़ें ताकि उनकी सेवा कर सकें। गणितविद्या पढ़ाई जाती है और इन विश्वविद्यालयों में गणित-विद्या का मान (पैमाना, अन्दाज़ा,standard) अमेरिका से कहीं बढ़ा-चढ़ा है। इन्हें आध्यात्मिक शास्त्र, काल्पनिक (अनुमानशील) शास्त्र और अन्य संक्षिप्त विज्ञान पढ़ाये जाते हैं, किन्तु इन कहने मात्र कला-महाविद्यालय में किसी उपयोगी कला का कोई व्यावहारिक विज्ञान नहीं पढ़ाया जाता। उपयोग में लाई हुई रसायन-विद्या नहीं पढ़ाई जाती, बीनने और खानों सम्बन्धी विद्या की शिक्षा विश्वविद्यालयों में नहीं दी जाती। रंगसाज़ी, कुम्हारी, मिकैनिकल इंजीनियरी (Mechanical Engineering-यंत्र संबन्धी विद्या) नहीं सिखाई जाती। इन उपयोगी हुनरों से भी लोग वञ्चित रखे जाते हैं, शस्त्र-विद्या की तो बात ही क्या कहना। अपने घरों में किसी तरह के शस्त्रास्त्र लोग नहीं रखने पाते। कोई अपने घर में बड़ा चाकू भी नहीं रख सकता। बड़ा चाकू रखनेवाले को जेल दी जाती है। किसी तरह शस्त्रास्त्र या युद्ध विद्या की इजाज़त नहीं है। इस से तुम उस शिक्षा की असारता जान सकते हो जो कुछ धनिक हिन्दुओं या मुसलमानों को, जो भारतीय महा-विद्यालयों की शिक्षा की बहुत बड़ी फीस देने की शक्ति रखते हैं, दी जाती है।

भारत में कुछ नवस्थापित श्रेष्ठ दल हैं जो सुधार का अति सुन्दर काम कर रहे हैं, किन्तु वीरजनों की पूजा और प्रमाण के सामने झुकाने की वृत्ति, जो नस नस में समा गई है, लोगों को उस प्रत्येक वस्तु के विपरीत कर देती है जो इन के नेताओं के नाम से उन के पास नहीं पहुँचाई जातीं। हरेक दल या आन्दोलन नामों या व्यक्तियों की बाढ़ अपने

इर्द-गिर्द बाँध लेता है। अपने मरे हुए नेताओं की करतूतों और कहावतों को आगे बढ़ने के लिए चलने का आरम्भक विन्दु बनाने के बदले वे उन्हें सीमान्त रेखायें या न लंघने वाली बाड़ (fence) और झाड़ियां मान लेते हैं। इस तरह पर भारत में सुधार की देशी-संस्थायें जड़ वत् स्थिर होने लग जाती हैं।

भारत का रोग आप को बता चुकने के वाद, और इस रोग को दूर करने के उपायों की सूचना देने के पीछे, राम आपसे भारत के लिए चिन्ता करने की, उसका हित चिन्तन करने की, प्रार्थना करता है। पहली आवश्यक चीज़ यही है। यदि भारत के लिए आप का दिल दुःखता है और दिलो-जान से आप उसकी पीड़ा दूर करने के काम में लगजाँय, तो सब कुछ हो सकता है। "इच्छा होने ही से उपाय निकल आता है" (where there's a will there's a way)। भारत के लिए कुछ करने का संकल्प कीजिए। क्या मानवजाति की भलाई के विचार से आप भारत के लिये कुछ करने को तैयार हैं ? क्या आप भारतको दिलोजान से प्यार करेंगे ? एक पददलित जाति के कल्याण के लिये अपना जीवन होम देने को क्या आप राज़ी हैं ? क्या उसके काम के लिए आप अपना समय और जीवन लगा देने को राज़ी हैं ? तीस कोटि मनुष्य दुनिया की सारी आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा हैं। तीस कोटि मनुष्य ! हम उन्हें सिखा सकते हैं, शिक्षा दे सकते हैं, उनकी उद्योग-शक्तियों को अच्छे काम के लायक़ बना सकते हैं। यदि ये तीस कोटि मनुष्य आप के साथ काम करने लग जाँय, यदि वे आपही की तरह विचार करने लगें, यदि उन्हीं बातों में वे अपने दिमागों को भी लगा देवें जिनमें आप लगाते हैं, तो क्या आपको उनसे सहायता और मदद

न मिलेगी ? यदि तुच्छ दोभों (रोषों) और परेशानियों में बरबाद होने से हिन्दुस्तानियों के दिमाग और शक्तियां बचाई जाँय, और उच्च विचारों तथा श्रेष्ठ भावनाओं में वे लगा दी जाँय, तो भारत की बड़ी भारी आबादी अमेरिका से अधिक फ्रांकलिन (Franklins) और एडिसन (Edisons) पैदा करेगी। इस तरह भारतकी शक्तियों को उपयोग में लाकर क्या संसार के विभूति की वृद्धि न होगी ? संसार को समृद्ध करने के लिए, अपने साथी मनुष्यों की सहायता के लिए, अपनी निजी भलाई के लिए, भारत की चिन्ता कीजिए और भारतवासियों को अपनी ही श्रेणी में ले आने की कोशिश कीजिए। यही करना है।

भारत को उठाने के उपाय।

अच्छा, यह कैसे हो सकता है ? राम को दो उपाय सुझाने हैं। अवश्य ही, एक तो बात यह है कि अमेरिका वासी, यथार्थ में उत्सुक अमेरिकावासी, सत्य के लिए अपना बलिदान करने वाले अमेरिकावासी, हिन्दुस्तान भेजे जाँय। अमेरिका का कूड़ा हमें न भेजो। अमेरिका में जिन लोगों को कोई काम नहीं मिल सकता, उन्हें हिन्दुस्तान पर न उड़ाओ। समाज का सत, अमेरिका की भलाई, भारतवर्ष को भेजो; इसी की वहाँ आवश्यकता है। हमें वहाँ उन लोगों की ज़रूरत है जो पारहियों, नीचतम जाति, के बीच में जाकर काम करें, जिस श्रम के लिए उन्हें कोई धन्यवाद न मिलेगा, ये शूद्र आप को इनाम न देंगे, वे आप के काम के लिए धन्यबाद भी न देंगे, क्योंकि ये लोग बड़े गरीब हैं, अपढ़ हैं, जाहिल हैं। आप उनके लिए जो कुछ करेंगे उसके पुरस्कारमें वे आपको वस्त्र और भोजन भी न देंगे। क्यों ! कारण यह है कि उनके पास खुद ही खाना और कपड़ा नहीं है। वहां उन

पुरुषों की ज़रूरत है जो इन लोगों के बीच में जाकर काम करेंगे, जो अपने को भूखा मारकर इन ग़रीब आदमियों की सहायता करेंगे। क्या अमेरिका के आदमी इस काम को न उठावेंगे? श्रेष्ठ अमेरिका से, स्वार्थ त्यागी (अपने को बलिदान करने वाले) अमेरिका, से ऐसे महा पुरुष मिलने चाहिएं? एक अच्छी ऐसी उद्देश्य लोगों की, एक दल, जो लोग इस काम को करेंगे, उस के पाने की आशा राम रखता है। राम उस ढँग के धर्मप्रचारक (missionaries) नहीं चाहता है, जो भारत को जाते हैं, जो अमीरी-बंगलों में रहते हैं और लोगों पर प्रभुता जमाते हैं, जो जोड़ी गाड़ी में सैर करते हैं और अत्यधिक लौकिक प्रतिष्ठा में पगले बने फिरते हैं। इन लोगों के द्वारा भारत का उद्धार या उत्थान नहीं हो सकता। हमें सच्चे काम करनेवालों की, सत्य के लिये बलिदान होने वालों की, उन त्यागियों की ज़रूरत है, जो पाराहियों के साथ ज़मीन पर लौटने को राज़ी और तय्यार हों और जो उनके साथ चीथड़े पहन कर संतुष्ट रहें, जो उनके साथ भूखे रहें, जो उनके साथ अधकच्ची रोटी का खुरखुरा और कड़ा छिलका खाने में राज़ी रहें। हम उस तरह के लोग चाहते हैं जो अपनी इन्द्रियों के भोगों को छोड़ सकते हैं और स्वार्थपूर्ण सुखों को छोड़ना पसन्द करते हैं। आप कहेंगे, "यह कठिन कर्त्तव्य है" और "यह काम करना बहुत मुश्किल है।" नहीं, इसे कठिन, धन्यवाद रहित, काम न समझो। इस का काफ़ी इनाम है। निजी अनुभव बतलाता है कि दूसरे मनुष्य को उठाने की यदि हम चेष्टा करते हैं, तो वह आदमी चाहे उठे या न उठे, किन्तु हम अवश्य उठ जाते हैं। "क्रिया और प्रतिक्रिया समान और विरोधी होती हैं", (Action and reaction are equal and opposite)। दूसरों को फायदा

पहुँचाने के विचार से कोई काम उठाने की लोगों की धारणा निरर्थक है, यह मूर्खता भरी भूल है। अमेरिकावासियो! राम के व्याख्यानों से तुम्हारा लाभ चाहे हुआ हो या न हुआ हो, किन्तु उनसे राम का लाभ अवश्य हुआ है, और यही काफी इनाम है। हरेक व्यक्ति का तजुर्बा यही जाहिर करता है। इस पद्म को, इनाम पर बिना दृष्टि रक्खे, करो। तुम्हारा काम खुद ही अपना पुरस्कार होगा। निस्स्वार्थ काम ईश्वर को ऋणी बनाता है, और ईश्वर ब्याज सहित ऋण चुकाने को बाध्य है। अमेरिकनों! हिन्दुस्थान को जाओ और आत्म-ज्ञान (Self knowledge), आत्म-निर्भरता (Self-Reliance) और आत्म-सम्मान (Self-Respect) या वेदान्त का खूब प्रचार करो। उस दिन तुमने "सफलता की कुंजी" पर राम का व्याख्यान सुना था, और यह साबित किया गया था कि सफलता का एक मात्र रहस्य व्यावहारिक वेदान्त है, दुनिया की दूसरी कोई वस्तु नहीं है। केवल वही सफलता का रहस्य है। उस वेदान्त को प्राप्त करो, उसे स्वयं अनुभव करो, उस पर अमल करो और वहाँ जाओ। तुम अपने ओठ चाहे न खोलना, तुम्हारा चरित्र ही, तुम्हारा व्यापार (कर्म) तुम्हारा बर्ताव, उन्हें शिक्षा देगा।

भारत जाने वालों के ध्यान पर जो अत्यन्त महत्वपूर्ण कर्त्तव्य अंकित करने के योग्य है, वह है भारतवासियों में साहसिक भाव (adventurous spirit) का जाग्रत करना। वे बेचारे विस्तृत विश्व में नहीं निवास करते, वे अपनी ही रची हुई दीन, क्षुद्र निजी दुनियाओं (जीव सृष्टि) में वास करते हैं। प्रतिबंधक जाति-प्रथा (Hampering caste system) हिन्दू को भारत से बाहिर पग रखने को मना करती है। दूसरे देशों को जाना और जहाज़ पर सवार होना

कठोर धर्माचार से असंगत है। इन दिनों जिन धनी हिन्दुओं में धर्म की कट्टरता छोड़ देने के लिए काफी साहस और नास्तिकता (अधर्माचार) होती है और विदेशों को, विशेष कर इंग्लैंड को, शिक्षा पाने के लिए जाते हैं, वे हज़ारों भारतीय रुपए दूर देशों में खर्च करते हैं और आम तौर पर पूरे पँखदार (सर्वापूर्ण Full fledged) बारिस्टर या कानूनाचार्य (lawyers) बनकर आते हैं, और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष (परोऽक्ष वा अपरोऽक्ष) भाव से मुकद्दमेबाज़ी बढ़ाते हैं, और अपने मुवक्किल, ग़रीब किसानों से झिटका हुआ रुपया, कुछ नाशकारी अंग्रेज़ी शराबों और मद्यों के अलावा, सहज में टूट जाने वाले काँच के पदार्थ (Brittle glassware), लोहे की चीज़ें (cutlery) चित्रपट (tapestry) या इंग्लैंड के बने हुए चित्र खरीदने में खर्च करते हैं। जिन ग़रीब भुक्खड़ मजूरों की तनुकसिज़ाजी और मुकद्दमेबाज़ी उनकी ग़रीबी और भूख की वृद्धि के अनुसार ही बढ़ती जा रही है। उनसे हरण किए हुए धन का यह कैसा भयंकर दुरुपयोग है।

भारतीय ग़रीब जातियों में जापानियों की साहसिक मनोवृत्ति के प्रचार करने की बहुत ही बेढब ज़रूरत है। जापानी लड़के केवल जहाज़-भाड़ा लेकर अमेरिका चले आते हैं। वे अमेरिकन भद्र पुरुषों के घरों में काम करते हैं और विभिन्न प्रकार की पाठशालाओं में पढ़ने का भी प्रबन्ध कर लेते हैं। इस तरह अमेरिका में कुछ साल बिता कर वे अपनी जेबें खचा खच रुपए से भर कर और दिमाग विद्या से भर कर जापान को लौटते हैं।

अन्ध विश्वास और (जन्म) भूमि से चिपटे रहने को त्याग देने की शिक्षा भारतवासियों को देना उचित है; जाति के कारण उन्हों ने अपने को (जन्म) भूमि का दास बना

लिया है। अपने पूर्व पुरुषों की भूमि को छोड़ना वे किसी अंश में धर्म लंघन समझते हैं, और इस तरह अपने को भूमि का गुलाम बनाते हैं। समय की गति के साथ २ बढ़ने वाला बनाने के लिये हमें उन्हें स्वदेश छोड़ कर विदेश जा कर बसने की शिक्षा देनी चाहिए। लोग यूरोप से निकल पड़े, यहाँ अमेरिका आये, और अमेरिका को उन्हों ने इतने ऊँचे पर पहुँचाया कि यूरोप बहुत पीछे पड़ गया। यदि हिन्दुस्तानी देश त्याग करके अमेरिका आवें, दूसरे देशों को जाँय, तो भारत को कम लोगों को खिलाना पड़े, और फलतः वहाँ पीछे रह जाने वाले लोग मज़े में हो जाँय और देशांतरगामी भी अच्छे रहें। हमारे शरीर-तंत्र के स्वास्थ्य के लिए रक्त को घूमते रहना चाहिए। इसी तरह दुनिया या किसी देश के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए लोगों को प्रायः घूमते, विचरते और एक-दूसरे से मिलते-जुलते रहना चाहिए, अन्यथा जड़ता या मृत्यु की प्राप्ति होगी। यदि हम इंगलैंड और अमेरिका से जाँय और हिन्दुओं को शिक्षा देने का यत्न करें, तो लाख चेष्टा पर भी हम वास्तविक स्वाधीनता के भाव को उन में नहीं जगा सकते, क्योंकि आम तौर पर लोगों के आस-पास के पदार्थ, सामान्य निकटवर्ती वस्तुएँ, जड़ बनाने वाली हैं, सब ओर से सम्मतियां वा सूचनायें इन लोगों को दुर्बलता के मोह में फँसा रखती हैं। यह मोह-जाल दूर होने के लिए उन्हें स्वदेश को छोड़ना चाहिए। और जब वे अमेरिका तथा दूसरे देशों को जाँयगे, तब, चाहे वे कोई विद्या या रोज़गार भी वहां न सीखें, केवल विदेशी सभ्य लोगों से मिलने-जुलने से ही वे अनजाने, मर्ज़ी से या बेमर्ज़ी से स्वतंत्रता की वृत्ति प्राप्त करेंगे, उनकी दृष्टि की दौड़ बढ़ जायगी, उन का क्षेत्र विस्तृत हो जायगा, उन के विचार

फैल जाँयगे। यह आप ही शिक्षा है। "दूसरे देशों को देखना खुद ही शिक्षा है"।

भारतवर्ष में एक हिन्दू या मुसलमान, या कोई भी साधारण देशवासी, एक अंग्रेज़ या अमेरिकन के पास जाने की हिम्मत नहीं कर सकता। वह गोरे आदमी से डरता है, बीस या तीस फुट की सम्मान पूर्ण दूरी पर खड़ा होता है। वह पतलूनों और हैटों को देख कर काँपता और थर्राता है। एक रेलगाड़ी में यदि कोई यूरोपीय बैठा होता है, तो शायद ही कभी कोई देशवासी उसके साथ बैठने पाता है। रेल के स्टेशनों पर हिन्दुस्थानियों का अंग्रेजों से ठोकरें खाना और निकाला जाना राम ने देखा है। यदि कोई यूरोपीय किसी देशवासी को अपने घर की तरफ आते देखता है, तो वह अपने नौकर से उसे जाकर भगा देनेको (हाते से ठोकरें लगा कर निकाल देने को) कहता है। इस तरह भारतवासियों पर विदेशियों से दुर्बलता, दुर्बलता, दुर्बलता का जादू किया जारहा है। और फिर अपने सजातियों द्वारा, अपने ही स्वदेशियों द्वारा उनपर ईर्ष्या, क्लेश और मत भेदों के जादू का चक्र चलाया जाता है। "वह कोई अन्य वस्तु है, मैं कोई दूसरी वस्तु हूँ, वह मेरा प्रतिद्वंदी है, अमुक मेरा शत्रु है"। फिर सब सरकारी दफ्तरोंमें, अच्छी नौकरियोंके देने में कुल या जाति-भेद के विचारके द्वारा, सरकार दलबन्दी के भाव को बढ़ाती है, और इस तरह पर काम चलाती है कि हर मनुष्य अपने भाई का शत्रु हो जाय, और उसे अपना घोर बैरी समझे। भारत की वर्तमान राजनैतिक और सामाजिक दशा लोगों में स्वतंत्रता का भाव पूर्ण खचित न होने देगी। शिक्षा क्या वस्तु है? शिक्षा का लक्ष्य स्वाधीनता के सिवाय और कुछ नहीं है। यदि शिक्षा मुझे

स्वाधीनता और स्वतंत्रता (मोक्ष) को नहीं देती, तो उस पर धिक्कार है; हटाओ उसे, मुझे उसकी ज़रूरत नहीं। यदि शिक्षा मुझे बन्धन में रखती है, तो वह मेरे किस काम की। इस तरह, उनमें सच्ची शिक्षा, या स्वाधीनता उत्पन्न करने के लिए अपना आस-पास बदलने में उनकी सहायता करो। यह कैसे किया जाय? यह काम करने का एक ढँग तो वहाँ जाना और उन्हें सिखाना है।

अपरिहार्य आवश्यकता
और
तात्कालिक उद्धार।

एक और तात्कालिक उपाय है। ऐ अमेरिकनो! क्या तुम सत्य और न्याय के नाम में, धर्म और तत्वज्ञान के नाम में, विज्ञान और हुनर के नाम में, इतना काफी रुपया नहीं जमा कर सकते कि जिससे तुम भारतीय विश्व विद्यालयों के कुछ उपाधि प्राप्त युवकों को अमेरिका बुलाओ, और यहाँ उन्हें आपकी औद्योगिक, यान्त्रिक तथा अन्य उपयोगी कोठियों में, अपने साहित्य महाविद्यालयों में, अपने अस्त्र-शस्त्रागारों और अन्य स्थानों में शिक्षा दिलाओ, उन्हें कपड़ा बीनना और खानों का काम तथा दूसरे हितकर हुनर सिखाओ और पढ़ाओ? भारत को उठाने का यह बहुत ही सीधा रास्ता है। यहाँ रुपया जमा करके भारतवासियों को इस देश में बुलाओ। वे भारतवासी, जो अमेरिका में शिक्षा पावें, भारत को लौट कर औद्योगिक विश्व विद्यालय (Industrial Universities) चला सकते हैं। वे ग़रीब श्रेणियों के रंग-ढंग जानते हैं। वे ग़रीब हिन्दुस्थानियों की भाषा, आदतें

और रीतियां जानते हैं, और तुम्हारे अमेरिकनों की अपेक्षा वे अध्यापक की हैसियत से भारतवासियों में अच्छा काम कर सकते हैं। अमेरिकन अध्यापक केवल ऊँची जातियों को पढ़ा सकते हैं, वे केवल अमीर लोगों को पढ़ा सकते हैं जो अंग्रेजी जानते हैं। ग़रीब लोग अंग्रेज़ी नहीं जानते। ग़रीबों की शिक्षा के लिए हमें उन लोगों की ज़रूरत है जो उनकी भाषा और उनके तरीके जानते हैं। भारतवासियों को उठाने का यह ठीक ढँग और अत्यन्त अमोघ साधन है।

अमेरिका के स्वतंत्र तट पर जब भारतवासी क़दम रखेंगे और भद्र महिलाओं और पुरुषों को सरगर्मी से अपने से हाथ मिलाने और अपने बराबर वालों के समान स्वागत करने को तैयार पायेंगे, तब उनका डर भाग जायगा, फिर श्वेतांग पुरुष उनके लिए महा भय की सामग्री नहीं रहेगा, उनमें आत्म-विश्वास लौट आयगा, माया का पर्दा फट जायगा और स्वाधीनता की मनोवृत्ति प्रत्यक्ष प्राप्त हो जायगी। अमेरिका में शिक्षा पाये हुए भारतीय विद्यानिधियों (graduates) को कार्य और स्वाधीनता के प्रचारक होकर अपनी मातृ भूमि को लौटने दो। विज्ञान और कला की शिक्षा भारत में उनके द्वारा प्रचारित होने दो। अपने देश में व्यावहारिक वेदान्त फैलाने में भारत के बसने वालों की सहायता होने दो। इस तरह से जब घाव पूर जायगा, तब पपड़ी आपही आप गिर जायगी। जब लोग ठीक तरह की शिक्षा पावेंगे तब दूसरी कठिनायां आप ही दूर हो जाँयगी। यदि कुछ भारतीय उपाधि-प्राप्तों को तुम यहां बुला सको और, मान लो, उन्हें दो या साल तक शिक्षा दे सको और पढ़ा सको, तो वे भारत लौटने पर तुरन्त काम शुरू कर सकते हैं, रोज़गार चला सकते हैं, अपने लिए और महा ग़रीब जातियों

(लोगों) के लिए भी उपयोगी काम कर सकते हैं।

अमेरिका का एक ही धनी इस श्रेष्ठ काम को कर सकता है, खड़ा होकर कह सकता है कि भारतीय विश्वविद्यालयों के उपाधिप्राप्तों को अमेरिका में शिक्षा दिलाने के काम में मैं, मान लीजिये, तीस लाख रुपया लगाऊँगा। यदि तुम में से एक आदमी इस कर्त्तव्य को अभी उठा ले, इस काम को ले ले, और तीन लाख रुपए जमा करदे, तो गरीब भारतवासियों को अमेरिका में शिक्षा दिलाने के लिए हम अच्छी छात्र-वृत्तियां स्थापित कर सकते हैं। राम अमेरिकन समाचारपत्रों से विनती करता है, राम हरेक और सब अमेरिका वासियों से विनती करता है। यदि तुम में से कोई आगे बढ़ कर इस भार को उठा सकता है तो समग्र संसार का हित करोगे। मान लो कि जो लोग यहां मौजूद हैं, उनमें एक भी इतना धनी नहीं है, तो क्या अपने अमीर मित्रों, अपने अमीर पड़ोसियों के सामने तुम इस विषय को नहीं रख सकते? क्या तुम अपने अमीर मित्रों से एक बार राम से मुलाकात करने को नहीं कह सकते? यदि तुम हज़ारों नहीं देसकते, तो क्या अपनी विधवा का यत्किंचित धन भी नहीं दे सकते? कम से कम इतना तुम कर सकते हो। राम तुम से कुछ अपने लिए खाने को नहीं चाहता, राम तुम से अपने लिए कोई कपड़े नहीं माँगता। नष्ट हो जाँय ये ओठ यदि ये निज के स्वार्थ के लिए कुछ माँगे। यह काम तुम्हारा भी उतना ही है जितना राम का। राम ठीक उतना ही अमेरिकन है जितना भारतीय। विस्तृत विश्व मेरा घर है और भलाई करना मेरा धर्म (The wide world is my home & to do good is my religion)। ईसा राम के हृदय का उतना ही नगीची और प्यारा है जितना कृष्ण। राम के लिए बुद्ध भी वैसा ही अपना

है जैसा शंकर। राम इस या उस सम्प्रदाय का नहीं है। राम तुम्हारा है, सत्य तुम्हारा है। सत्य के नाम में, न्याय के नाम में, मनुष्यता और अमेरिकन स्वाधीनता के नाम में, तुम से आगे बढ़ने को, भारत की वेदना को अनुभव करने को कहा जाता है। तुम क्या करने को हो? कुछ लोग क़लम से सेवा कर सकते हैं, कुछ वाणी से सहायता पहुँचा सकते हैं; अपने दोस्तों से इस बारे में बात-चीत कर सकते हैं, और इस विषय पर व्याख्यान दे सकते हैं। कुछ शारीरिक श्रम से सहायता कर सकते हैं, कुछ अपनी थैली से मदद कर सकते हैं। अब कहो, अमेरिकनों कहो, किस तरह पर तुम इस पक्ष को ग्रहण करने को उद्यत हो? किस तरह तुम सहायता करोगे? धनिकों को धन देना चाहिए. शूरवीरों को शिक्षकों की हैसियत से आगे बढ़ना और हिन्दुस्थान जाकर लोगों में, नीच जातीय पारहियों में भी, काम करना चाहिए। वाणी के (gifted talkers) वरपुत्रों को इस मामले पर अपने धनी मित्रों से बातचीत करनी चाहिए। समाचार पत्रों को लेखनी से इस पक्ष को ग्रहण करना चाहिए। जो सहायता करने को प्रस्तुत हैं और सत्य की सच्ची लग्न जिनमें है, जो अपने आत्मा को प्यार करते हैं, उन सब से राम के पास आने और अपने नाम तथा पते लिखा देने की प्रार्थना की जाती है, अपने ही हाथ से वे लिख दें कि किस तरह पर वे सहायता करने को राज़ी हैं। यदि वे कोई रकम जमा करना चाहते हैं, तो अमेरिकन संरक्षकों के हाथ में रुपया दे दिया जायगा। तुम्हारे अपने अमेरिकावासी उस रुपए को रक्खेंगे यदि तुम आकर दूसरे तरीकों से सेवा करने के लिए अपने को अर्पण करना चाहते हो, तो ऐसा कर डालो जिससे हम विधिपूर्वक काम शुरू करने का निश्चित प्रबन्ध कर लें।

तुम क्या करने को राज़ी हो? भारतवासियों की ओर से अमेरिकनों से यह राम की विनती है। निष्काम-भाव से राम यह विनती करता है। राम का इससे कोई व्यक्तिगत सरोकार नहीं है। राम कहीं भी हो स्वाधीन है। राम किसी तरह से भी बन्धा हुआ नहीं है, सब लोक राम के हैं। राम सब कहीं रह सकता है। किन्तु देखो, भारत तुम्हारे अपने पैर है, और तुम सिर हो। चरणों की उपेक्षा न करो। यदि पैर ज़ख्मी और पीड़ित हैं, तो तुम लड़खड़ा कर गिर पड़ोगे। भारत वासियों के रूप में ईश्वर तुम्हारे पास भूखा आया है, उसे खिलाओ। हिन्दुओं के रूप में ईश्वर तुम्हारे पास नंगा आया है, उसे कपड़े पहनाओ। उन लोगों के रूपमें ईश्वर तुम्हारे पास व्याथित और ज़रूरत का मारा आया है, उसकी खबर लो। ये लोग इसी लिए अन्धकार और यातना में पड़े हुए हैं कि तुम दान और प्रेम के श्रेष्ठ गुणोंसे अपने को धन्य कर सको। वे इसी लिए गिरे हुए हैं कि तुम्हारा उद्धार हो। अपने ग्रहों को धन्यावाद दो कि तुम्हें अपनी उदात्त वृत्तियों (उच्च भावों) और श्रेष्ठ प्रयत्नों के अनुशीलन का अवसर प्राप्त हुआ है। अवसर से लाभ उठाओ, और प्रसन्नता पूर्वक, हँसी-खुशी, उन्हें सहायता पहुँचाओ।

अमेरिका चीनियों, जापानियों, सुर्ख हिन्दुस्थानियों (Red Indians) और निगरो लोगों को शिक्षा दे रहा है। पशुओं के प्रति भी निष्ठुर व्यवहार रोकने में वह कोई कसर नहीं उठा रखता है, ऐ अमेरिका! ये हिन्दू तेरे अपने ही मांस और रक्त हैं, आर्य जाति के हैं, बड़े ही कृतज्ञ हैं, स्नेही हैं। वफादार हैं, इनकी उपेक्षा न कर।

——:-*-:——

पुनः— जिन्हें इस विषय में कुछ अधिक जानना हो, वे पत्र-व्यावहार करें।

राम स्वामी से,

मारफत डी, अलबर्ट हिल्लर, एम, डी, १०।११ सट्टर स्ट्रीट सैन फ्रांसिस्को, कैली फोर्निया, यू. एस. ए.

——:o:——

नोट—यह व्याख्यान प्रथम २ अमेरिका में प्रकाशित हुआ था, तत्पश्चात् सन् १६०३ के अन्त में भारतवर्ष के प्रसिद्ध पत्र इण्डियन मिरर (Indian Mirror, Calcutta) में प्रकाशित हुआ। फिर यह एप्रिल १६०५ में सक्खर (सिन्ध) के यन्त्रालय एडवर्ड प्रेस में पुस्तकाकार में छपा। भारतवर्ष की राजनैतिक दशा में तब से अबतक बहुत ही परिवर्तन हो गया है, इस लिये स्वामी जी के कुछ कथन आज कल बिलकुल ठीक नहीं बैठते हैं, परन्तु मूलव्याख्यान कायम रखने के लिए उसे जैसे का तैसा दे दिया गया है।

सम्पादक

निजानन्द सकल विभूतियों का तमस्सक है।

(श्रीमान् स्वामी नारायण के शरीर व श्रीमान् स्वामी राम की लेखनी से लिखित इस लेख को स्वामी राम ने गंगा में गंगा हो जाने से कुछ घंटे पहले लिखा था)

आज सत उपदेश के एक पर्चे को मानों हवा उड़ा लाई। उठाया तो उस में एक लेख इस शीर्षक के साथ थाः—
"राम बादशाह के नाम ख़त"।

वाह! —

ऐ कबूतरी परी व कूए व बाम आन् परी।
नामए बर गर्दनत बनदम गर आँजा बगुज़री॥

बेहद हँसी आई। अब आते हैं उन आक्षेपों के उत्तर—

(१) क्या भगवे कपड़ों से साधु होता है?

कहीं-कहीं रंगे कपड़ों में रंगा दिल भी पाया जाता है, मतवाला योगी भी दिखाई देता है, राम का दीवाना मस्ताना भी झलक (दर्शन) दिखा जाता है। किंतु सब जानते हैं कि आत्मा का प्रकाश फ़क़ीरी लिबास में असीर (क़ैद) नहीं। वह सच्ची स्वतंत्रता किसी तरह के मार्ग, संप्रदाय, ढंग और फ़ैशन की अभ्यस्त नहीं है। जहाँ जाते हुए पाँव थर्रा जाँय और शिर चकरा जाँय, वहां भी यह बिजली चमक जाती है, यह बत्ती झलक जाती है। यह सूर्य ऊँचे हिमालय के पवित्र हिमानी (बर्फ़िस्तान) की स्वच्छ-निर्मल नीली झीलों में झाँकता हुआ पाया, और गहरी खाई के गँदले पानी में भी गौरव से प्रकाशमान दृष्टि गोचर हुआ। क़ैदख़ाने में वह आ जाता है और लोहे की कड़ी ज़ंजीरें पड़ी रह जाती हैं, वरन् इस से भी अधिक जकड़े हुए हाथ पैर रूप और नाम

की बेड़ियां भी धरी रह जाती हैं। अँधेरी कोठरी में बंद क़ैदी (ईश्वर के हाथ में हाथ डाल कर सातों लोकों) में स्वच्छंद विचरता है। या आठवें अर्श (आकाश वा लोक) पर इस अकेले की नीली घोड़ी के सुम की टाप सुनाई देती है। नीचे बाज़ार में लोग चल रहे हों, ऊपर छत पर घर वाले काम काज में लग रहे हों, एक कोने में बैठा कोई पढ़ रहा हो, ए लो! पढ़ते-पढ़ते वह अक्षर पढ़ा गया जो लिखने ही में नहीं आ सकता।

वह किताबे-अक़्ल की मेज़ पर जो धरी थी यों ही धरी रही।
ख़िलवत दर अंजुमन हो गई, मंगल ही में जंगलका मज़ा आगया।

सैर को निकले। सौभाग्य से कोई साथी साथ न हुआ। चाँदनी खिल रही थी, या उषा (twilight) की लाली फैल रही थी। वायु सरसराने लगी। सड़क पर चलते एकाएक यह कौन आ सम्मिलित हुआ? वही जो एकमेवाद्वितीयम् है। उधर उषा की लालिमा भाई, इधर निराली मदिरा रग और रेशा में समाई।

आँ मै कि ज़ दिल ख़ेज़द या रूह दर आमेज़द।
मख़मूर कुनद जोशश मर चश्म खुदा बीं रा॥

अर्थ—वह मद्य जो दिल से उठती है या आत्मामय हुई होती है, वह ईश्वर द्रष्टा (आत्मानुभवी) के चित्त में उस के जोश को बढ़ा कर उसे अधिक मस्त करती है।

रेलगाड़ी में बैठे थे। पहियों के खटखट का लगातार खटराग जारी था। कमरे में बात करनेवाला कोई न था। खिड़की का पर्दा जो गिराया तो यकायक दिलोजान में दुलहा (प्यारा) उतर आया। रेल में बैठे के शरीर और संसार नहीं मालूम कहाँ का टिकट ले गए। आत्मिक-त्याग, (संसार और स्वर्ग का विराग) छा गया। सच्ची फ़क़ीरी

ने बहार दिखाई।

कहे गिरिधर कवि राए चढ़ी जिन खुद की मस्ती।
तिन ज्ञान गंग में दीनी बहाय फ़क़ीरी गृहस्ती।

(२) क्या अग्नि के रंगवाले (भगवे) कपड़ों से साधु हो जाता है?

साधु वह है जिस के भीतर ज्ञान की अग्नि ऐसे भड़क रही हो कि देह का अभिमान या साधु होने का अभिमान रेल तार इत्यादि नए ढँगो से द्वेष या पुराने ढँग से प्रीति, बिलकुल जल जाय। सारे संसार को उस के ज्ञान-प्रकाश की रश्मियों से उजाला पड़ा हो और आगे चलने का मार्ग दिखाई पड़ा आए। यदि यह नहीं, तो गीला ईंधन है जो धुआँ ही धुआँ कर रहा है, जिस से सब लोगों का नाक में दम हो रहा है। जब तक सूखेगा नहीं, न आप प्रकाशित होगा, न किसी को प्रकाशित करेगा। दिल नहीं रंगा, तो कपड़े रँगने से अपना या पराया दुःख कहां दूर हो सकता है?

लोग कहते हैं ज्ञानाग्नि (आत्म-प्रकाश) की अग्नि भड़काने के लिये ईंधन को पहले धूप में सुखा लो, अर्थात् कर्म-उपासना के द्वारा अधिकारी बना लो। राम कहता है, जो लकड़ी कट चुकी (जो मनुष्य साधु हो चुका), उसके लिये इस आग के पास पड़े रहना ही बहुत जल्दी सुखा कर अधिकारी बना देगा। हाँ, जो अभी छोटे पौधे हैं, उनको उगने तो दो। उगेंगे नहीं तो लकड़ी ईंधन के लिये कहाँ से आएगी? बकरे की ऊन उतारने से ही ऊनी कपड़े बनते हैं, पर ऊन बढ़ने तो दो। आएगी ही नहीं, तो पशम कहाँ से लाओगे?

इस प्रकार जिन लोगों के ख़यालात (अन्तःकरण) अभी कच्चे पौदों के तद्वत् हैं, वह आशा के बच्चे न तो कटने के योग्य हैं, न जलने के। जिन पर ऊन आई ही नहीं, उतारेंगे

क्या ? वह मूँड़ मुँडवायंगे क्या ? ऐसे लोगों के लिये कर्म-मार्ग प्राचीन काल से नियत चला आता है, कि वह आशाओं के खट्टे-मिट्ठे फल कुछ दिन ज़रा चक्खें और कर्म की भूल भुलैयाँ में ठोकरें और टक्करें खा खा कर ज्ञान और त्याग के सीधे मार्ग को अपने आप बायं (लवें)।

ज़रा अब ग़ौर कीजिए, पौधा उसी आकार में बढ़ेगा जिस प्रकार का बीज होगा। कृष्ण ने देखा कि अर्जुन के भीतर बीज तो है बदला लेने का, और ऊपर से उस समय बातें बना रहा है दयालु ब्रह्मचारी की सी। बीज तो बोया काँटेदार कीकर का, और पकाया चाहता है आम। विवश उसे दयालु की ओर से हटाकर युद्ध-विग्रह पर प्रस्तुत किया। प्यारे! खा तो लिया जमालगोटा (जब्बोलोटा) और अब जंगल (शौचालय) जाने में लज्जा मानते वा कष्ट अनुभव करते हो।

कर्मकाँड के विषय में भी यही दशा वर्तमान-काल के भारतवर्ष की है, अर्थात् इच्छाएँ हृदय-क्षेत्र पर बोये बैठे हैं बीसवीं शताब्दीवाली, और बातें लगाते हैं बीसवीं शताब्दी ईसा से पूर्व वाली। कर्मकाँड के विषय में जैसी चाह (इच्छा) होगी, वैसा ही 'चाहिए' (कर्तव्य) शिर पर चढ़ा रहेगा।

यदि राजसूय, अश्वमेध, दर्शपौर्णमास, अग्निष्टोम आदि यज्ञों वाली चाह अब हृदय में नहीं, तो इन यज्ञों का "करना चाहिए" भी आज हम पर अधिकृत नहीं होगा। आज चाह है योरप, अमरीका, जापान, आस्ट्रेलिया आदि के मुकाबले में ज्यों त्यों करके जान बचाने की, अतः आज "चाहिए" भारतवर्ष को इस प्रकार की शिक्षा पाना और कला-कौशल को व्यवहार में लाना कि जिससे नित्य वर्द्धमान अभावों (बे सरो सामानी) के पाप से तो बच सकें।

कर्मकांड समय और देश के साथ सदैव पहिले बदलता

चला आया और भविष्य में बदलता रहेगा। पर आत्मा (तत्त्व वस्तु) परिवर्तन-रहित है, और उसका ज्ञान सदैव एक रस रहेगा। जो लोग अपने स्वधर्म को (अर्थात् अपने से संबंध रखनेवाले कर्मकाँड को), अपनी वर्तमान ड्यूटी (कर्तव्य) को निष्काम होकर (फल की आशा त्यागकर) पूर्ण साहस से, परिश्रम और ध्यान से निबाहते हैं, वह ही एक आत्मज्ञान के प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषः ॥ १९ ॥

अर्थः—इस लिये लगातार संग रहित होकर तू करने योग्य कर्म को कर, क्योंकि निरासक्त होकर कर्म करता हुआ पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

(भगवद्गीता ३ श्लोक १९)

आत्मज्ञान विष्णु है, जो साहस और पुरुषार्थ के गरुड़ पर बैठता और सवारी करता है। यह आत्मज्ञान अपने गरुड़ (साहस) पर सवार हो जब भारतवर्ष की वायु पर लहराता था, तो इस सच्चे पति की प्रेम भरी दृष्टि का शिकार होने के लिये लक्ष्मी चारों ओर नाचती थी, वरन् वन-पर्वत में लोटती फिरती थी। पृथिवी ने छिपे छिपाए कोष और रत्नादि चरणों में ला उपस्थित किए, अनमोल हीरे उगल दिए, चरणों पर न्योछावर किए। प्रस्फुटित वसंत (शागिफतः बहार) ने पैर के तलवों का चुंबन किया।—

दौलत गुलामे-मन शुदो इक़बाल चाकरम।

अर्थः—विभूति मेरी दासी और वैभव मेरा चाकर होगया

जहां शमशाद के वृक्ष होंगे, कुमरी आ बैठेगी; गुल व लाला होंगे, बुलबुल आ चहचहाएगी। तुम भारत में विद्या और शिल्प की खुराक खिलाकर साहस के गरुड़ को तो

पालो, वही व्यावहारिक ज्ञान रूपी विष्णु फिर यहां विद्यमान पाओगे।

ओ ज्ञानस्वरूप! आनंद रूप! यदि भारतवर्ष के ५२ (बावन) लाख साधु-संतों में एक हज़ार भी ऐसे हों जिनके हृदयों में आपकी ज्ञान-गंगा की एक तनिक-सी नहर लहरें मार रही है, तो भारतवर्ष तो क्या, सारा संसार कृतार्थ हो जायगा।

एह जग रूढदा जाँदा, संताँ नूँ खबर करो।
संत न होंदे जगत में, जल मरदा संसार॥

जिन लोगों को अर्थ-शास्त्र (Political Economy) के नाम से ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं की विद्यमानता अखरती है, वह अपना ही बुरा चाहते हैं।—

संगे ज़नी बर आइना बर खुद हमे ज़नी।

अर्थ—दर्पण पर पत्थर मारना मानो अपने आप पर पत्थर मारना है।

जो साधु अपने रँग में रँगा हुआ ब्रह्मानंद के मद में मतवाला मस्ताना हो रहा है, वह तो शाहों का भी शाह है, ईश्वर का भी ईश्वर है, किसको मजाल है कि उस रँगीले सजीले आत्मतत्त्व के सम्राट के आगे चूँ भी कर जाय। नव-चन्द्रमा (वा द्वितीयका चाँद) उसी के चरणों में प्रणाम करता हुआ संसार में उत्सव (ईद) लाता है। सूर्य उसी की प्रकाश देनेवाली दृष्टि से दीप्तमान होकर चमकता फिरता है। समुद्र का तूफ़ान उसी का एक क्षुद्र उफान (उबाल वा जोश) है। किसकी शक्ति है उस तेज की आंधी की ओर आँख भरके ताक जाय। महाराजा रंजीतसिंह की एक आँख नहीं थी, पर कहते हैं, साधु ने वर दिया कि किसी में यह साहस न पड़ेगा कि तेरे मुखड़े की ओर आँख उठा सके, क्या मजाल (बल)

कि वह दोषान्वेषण करे। जब राजा रंजीतसिंह के मस्तक के दोष-गुण कोई नहीं देख सकता, तो महात्मा साधु, सच्चे बादशाह, की ओर दोष दर्शक (छिद्रान्वेषी) दृष्टि देखते समय क्या अँधी न होजायगी?—

सहर खुरशेद लर्ज़ाँ बर दरे-कूए-तो मी आयद।
दिले-आईना रा नाज़म कि बर रूए-तो मी आयद॥

अर्थः—कि तू ऐसा सुन्दर है कि प्रातः काल सूर्य तेरी गली में काँपता हुआ आता है। पर शीशे के दिल पर मुझे गर्व है कि वह तेरे सामने होता है।

सच्चे साधु, फ़क़ीर (ज्ञानी-महात्मा) के विरुद्ध यदि किसी की जिह्वा बोलने लगेगी तो गुंग हो जायगी, हाथ चलने लगेगा तो सूख जायगा, मस्तिष्क सोचने लगेगा तो जनून आ जायगा। कोई शंका-संदेह वाली बात तो राम कहता ही नहीं, आँखों देखी सचाई वर्णन करता है। सच्चे साधु की अवज्ञा हो और राम से? हर, हर, हर! स्वप्न में भी संभव नहीं। क्या कर्मकांड के बंदी और क्या सचमुच स्वतंत्र साधु, सबको प्रणाम, राम-राम, सलाम।

साधु फ़क़ीर को यह सम्मति देना कि वह अद्वैत का अमृत पिलाने के स्थान में रेल तार ज़हाज़ बंदूक आदि बनाने की चिंता में डूब मरें, यह सम्मति और परामर्श राम के हृदय और जिह्वा से तो न निकला, न निकलता है, न निकलेगा।

हाँ! जब साधु लोग अपने स्वरूप को भूल अपनी सच्ची राजगद्दी से नीचे उतर आते हैं, तो उनको कुत्ते भी फाड़ खाने को दौड़ेंगे। इस दशामें अपनी अवज्ञा वह स्वयं कराते हैं, अपमान और दुःख को एक तरह लालच देकर बुलाते हैं।

इंद्र जब "स्वप्न में शूकर बन" गया, तो शेष देवता अपने राजा की यह गति (दशा) देखकर लज्जित हुए और उसको

जगाने की चिंता में पड़े, अतः इंद्र को दुस्स्वप्न में खुजली, भूख, मार-पीट आदि तरह-तरह की पीड़ा और शोक का (शिकार) होना पड़ा।

सूर्य-ग्रहण के अवसर पर सूर्य के स्पेकट्रम (spectrum) में काली धारियाँ देखी जायँ, तो सफ़ेद दिखाई देती हैं। जानते हो, ये धारियाँ क्या बताती हैं? उनसे यह पता लगता है कि सूर्य में कौन-कौन सी धातु आदि तत्त्व हैं। सूर्य की संपत्ति का खोज मिलता है। ग्रहण के भीतर जो संपत्ति प्रकाशित जान पड़ती थी, उस पर जब छाया उतरा तो वह ग्रहण के अँधेरे में काली कलंक दृष्टिगोचर होने लगी। यही दशा प्रत्येक "मैं" "मेरी" (अर्थात् अधिकार-क़ब्ज़ा) की है। अज्ञान रूपी ग्रहण का अँधेरा, जो स्वतः बुरे से बुरा कलंक है, लगा रहे तो यह छोटे-छोटे कलंक अर्थात् हमारे दावे और क़ब्ज़े (चाहे धन-दौलत के संबंध के हों, चाहे विद्या-बुद्धि के, और चाहे संन्यास आदि आश्रम के) प्रकाशमान और प्यारे से लगते हैं, किंतु वह बड़ा दोष (अज्ञान) जब उड़ा, दावे, अधिकार मीठे नहीं लग सकते।

काली धारियों का दृष्टांत तो चाहे मिथ्या भी हो जाय, किंतु यह बात तो सदैव बनी ही रहेगी और स्थिर है कि हार्दिक संबंध और अधिकार, भीतरी दावे और कब्ज़े अँधेरी रात के जुगुनू हैं। शास्त्र और ज्ञानियों की बात तो दूर रही, साधारण अनुभव के प्रकाश में भी इनका कलंक होना सिद्ध होता है।

ध्यान—नीचे के लेख को पढ़ते समय यह ध्यान रहे कि दावे, कब्ज़े, अधिकार और आसक्ति आदि का वास्तविक संबंध हृदय से है, शरीर से नहीं। बाह्य दरिद्रता और वस्तु है, और हृदय की फ़क़ीरी और वस्तु। कपड़े रँगना और बात

है, और सच्चा संन्यास और बात है।

दावे और स्याही—जहाँ दावे (पकड़ जकड़) है, वहीं कलमष-हृदयता है, सत्यानाश है, निराशा व हताश है, अकर्मण्यता है, ख़राबी है, बरबादी है, हृदय की दशा परिवर्तन शील है, और बाहर के सामान भी परिवर्तित हो रहे हैं। इतना तो सब कोई जानता है। अब रही यह बात कि क्या बाहर के परिवर्तन और भीतरी परिवर्तन परस्पर कुछ संबंध भी रखते हैं कि नहीं। यदि रखते हैं तो क्या?

इतना भी हर कोई मान लेगा कि बाह्य ऋतु, मकान, संग आहार के बदलने से मन (भीतर) में परिवर्तन हो जाता है, और बुरी या भली ख़बर से हृदय प्रसन्न या शोकातुर हो जाता है। पर एक बात और भी है जिसका पूरे तौर व्यावहारिक विश्वास आना ही अंतर्दृष्टि का खुलना है। जिसकी बे ख़बरी से "नानक दुःखिया सब संसार" हो रहा है। वह बात क्या है—

अटल आध्यात्मिक नियम।

"जब तक हृदय से पकड़-जकड़ है, बाहर रगड़-झगड़ है।
दिल से छोड़ी आस, मुरादें आईं पास।"

गुज़श्तम अज़ सरे-मतलब तमाम शुद मतलब।

अर्थः—मतलब से परे हटना ही मतलब का पा लेना है।

माँगा करेंगे हम भी दुआ-ए-हिज्रे-यार की।
आख़िर तो दुशमनी है असर को दुआ के साथ।

मतलब-मतलब, अर्थात् इच्छा पूर्ति की इच्छा मत कर।

यह व्यावहारिक नियम, विज्ञानवाले अनुमान, निश्चय, अनुभव, परीक्षा, अध्यारोप-अपवाद-न्याय से निःसन्देह सिद्ध होता है। कलंक औरों के शिर मढ़ने की, उत्तरदायिता

औरों के शिर ठोंकने की आदित (प्रकृति) को छोड़ कर यदि हम विना रू-रिआयत के अपने जीवन के दुख-सुख-भरे अनुभवों के जड़-मूल पर ध्यान करें, तो विदित होगा कि हृदय का संसार की किसी वस्तु में उलझना (अर्थात् उसे व्यवहार में सत् या सच्ची मानना), उस की आवश्यकता में पड़ना, मलिनता में अड़ना, या किसी प्रकार की भी नाम-रूप में चित्तासक्ति का परिणाम निरंतर आवरहगर्दी (पीड़ा, कष्ट, भ्रान्ति) और हृदय-भंगता होती है। और हाँ, जब भली बुरी दशा और परिस्थिति, इर्दगिर्द के हालात और अस्बाब निर्मल दर्पण की भाँति तत्त्व-दृष्टि को नहीं रोकते !

दुनिया के सब बखेड़े। झगड़े फ़साद झेड़े ॥
दिल में नहीं रड़कते। न निगाह को बदल सकते ॥
गोया गुलाल हैं ये। सुर्मा मिसाल हैं ये ॥

जब भीतरी तेज (कान्ति) अभिलाषाओं के आवरण को उड़ाता है, जब सूर्य चाँद में अपना ही तेज दिखाई देता है। जब इस बात पर निश्चयात्मा होता है कि भूत भविष्य और वर्तमान के तत्व-वेताओं और ब्रह्मनिष्ठों में मेरा ही आत्मिक तेज जगमगाता है, जब हृदय इस बात को सत्य पाता है कि

"मुझ बहरे-खुशी की लहरों पर दुन्या की कश्ती रहती है,
अज़ सैले-सरूर धड़कती है छाती और कशती बहती है"।

जब नाम रूप की परिच्छिन्न अवस्था से स्वतंत्र हो, वर्णनातीत आत्मानंद में चित्त लीन हो जाता है, जब वह असली (परमानन्द की) मदिरा रंग लाती है।

कि आँ मेशवद बे दस्तो लब अज़ कामे-जानहा रेखता।

अर्थः—कि जिन कामों व कामनाओं की पूर्ति में अनेक जाने (प्राण) न्योछावर होती हैं, उन की ओर से भी जब वह जड़ मूक हो जाता है।

जब वाह्य और लौकिक पदार्थों को निश्चिन्ता और लापरवाही की तरंग तृप्तिके सागर में बहा ले जाती और क़हक़हा मारती है।

ईं दफ़्तरे-बेमानी ग़र्क़-मए नाब औला।

अर्थः—उत्तम प्रेम मद्य में यह व्यर्थ दफतर नाम रूप का ग़र्क (लीन) है।

अर्थात् जब शिव-समाधि आती है, तब संसार के धन-ऐश्वर्य, विजय और प्रताप, भूत प्रेत गहनों की तरह नाम-रूप की शमशान भूमि में शिव-रूप महात्मा के इधर-उधर जमघट मचाते नाचना आरंभ कर देते हैं, जमघट करते हैं, धमाचौकड़ी मचाते हैं।

क्या संशय—विपर्यः की गुंजायश है?

ओ हथकड़ी के कंगन पहने हुए अपराधी! यदि इस समय भी तू एक क्षण-भर के लिये तत्व-चिन्तन में शरीर और संसार को सचमुच भूल जाय, अपरिच्छिन्न स्वरूप में जाग पड़े, तो दंड की आज्ञा देनेवाले जज का दिमाग़ रुकजाय, बयान लिखनेवाले मिसलख़्वाँ का क़लम रुक जाय, पकड़नेवाले कोतवाल का हाथ रुक जाय, जिरह करनेवाले वकील की जिह्वा रुक जाय। कौन मस्तिष्क है, जो तेरे बिना सोच सकता है? कौन जिह्वा है, जो तेरी सहायता बिना बोल सकती है? कौन हाथ है, जो तेरी शक्ति बिना चल सकता है? मेरी जान! सब अपराधों का अपराध (सब पापों की जड़) अपने शुद्ध स्वरूप को व्यावहारिक रूप से या ज्ञान रूप से भूलना ही था। वस्तुतः अपराध यदि है, तो केवल इतना ही है, शेष सब अपराध और जुर्म उसी के विविध भेस (वेष) हैं।

क्यों हो अपराधी कर्मचारियों की खुशामद में पड़े ?
यह कचहरी वह नहीं है जो तुझे कैद कर सके।

लिखा है कि भृगुजी ने विष्णु के वाम अंग में (अर्थात् लक्ष्मी को) बड़े ज़ोर से लात मार दी। विष्णु ने उठकर भृगु के चरणों को प्रेम के आँसुओं से धोया, सिर के केशों से पोंछा और आँख, शिर और हृदय में स्थान दिया, और उस चोट के चिह्न को प्रमाणपत्र (सार्टीफ़िकेट) जानकर सदैव के लिये वक्षस्थल में स्वीकार किया। वाह! जो ब्रह्मनिष्ठ लात मारता है सांसारिक संपत्ति को, उसके चरण ईश्वर के भी शिर पर क्यों न होंगे। और जो भी कोई सांसारिक संपत्ति से लिपट कर गहरी निद्रा में लेटता है, वह भिखारी से भी लातें खायगा, सारे संसार का सम्राट और विधाता ही क्यों न हो। बस, यही नियम है, यही वेदांत की व्यावहारिक शिक्षा का निष्कर्ष है। इसमें संन्यासी साधुओं का ठेका नहीं। इस प्रकाश की तो सब को आवश्यकता है। क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या ईसाई, क्या मूसाई, सिख, पार्सी, स्त्री-पुरुष, छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच, सब कोई इस परम ज्योति से लाभान्वित होने का अधिकारी है। इस सूर्य के प्रताप बिना किसी का जाड़ा नहीं उतरेगा, इस धूप बिना किसी का पाला नहीं दूर होगा। इसमें खाली मानने की तो बात ही नहीं, ठीक-ठीक जानने का मुआमिला है। इसमें तर्क वितर्क की गुंजायश ही नहीं। 'हाथ कंगन को आरसी क्या है'? इतनी विद्या की व्यावहारिक जानकारी न होने से सब का नाक में दम होता है। (Ignorance of Law is no excuse) "नियम की अज्ञानता उपयुक्त बहाना निश्चित नहीं हो सकता"। अतः त्याग, वैराग्य (आत्मज्ञान) को ले लो, शेष सब कुछ स्वयं आ जायगा। इसी लिये वेद कहता है—"आत्मानं वा

विजानीयात अन्यां वाचा विमुंचथ ॥"

Know this Atman, give up all other vain words and hear no other.

आत्मा को पूरा-पूरा जान लो, अन्य किसी वस्तु की पर्वाह मत करो।

इल्म राओ अक्ल राओ कालो-कील।
जुम्ला रा अंदाख्तम दर आबे-नील॥
इस्म राओ जिस्म रा दर बाख्तम।
ता कमाले-मार्फ़त दरयाफ्तम॥

अर्थः—जब विद्या और बुद्धि, चूँ और चरा (क्यों कैसे) इन सब को मैं ने नील नदी में फेंक दिया। और जब मैंने नाम और रूप को हार दिया, तब मुझ को ज्ञान की पराकाष्ठा (पूर्ण अवस्था) प्राप्त हुई।

अर्थ—कॉलिज में एम्० ए० पास करके कुछ नवयुवक तो कालिज में प्रोफ़ेसर बन जाते हैं, जो कुछ पढ़ा उसी को पढ़ाते रहना उनका व्यापार हो जाता है। और कॉलिज से एम्० ए० पास करके कुछ नवयुवक वकील या मैजिस्ट्रेट आदि बन जाते हैं। अब वह कॉलिज के विषय (गणित आदि) दोबारा देखने का कदाचित् अवसर कभी भी न पाए।

एम्० ए० पास करना सब नवयुवकों के लिये आवश्यक था, किंतु प्रोफ़ेसर बनना आवश्यक नहीं। इसी प्रकार आत्मा को पूरा-पूरा जानलेना और किसी वस्तु की मन से पर्वाह न करना, तो प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है, किंतु रात दिन अध्यात्म विचार और समाधि में लीन रहना, निजानंद में तरंगे मारना, हिलोरे लेना, यह सौभाग्य प्रत्येक के भाग में नहीं। यह प्रोफ़ेसरी काम है सच्चे संन्यासी साधु लोगोंका।

वह लोग जो अपने पूर्व स्वभाव वा अध्यासानुसार अध्यात्मविद्या रूपी एम्० ए० पास करके इसी विद्या की शिक्षा देना, शिक्षा पाना और शिक्षा को व्यवसाय नहीं बना सकते, उनके लिये वेदों की आज्ञा है—

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छत ७ँ समा।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म्म लिप्यते नरे। १।
(ईशावास्योपनिषद्)

कर्म करते हुए ही जीये सौ साल गर।
मर्दे आरिफ़का हो आलूदा पर॥

अर्थ—"यदि काम-काज में लगे हुए भी तुम जीवन के सौ वर्ष व्यतीत करदो, तो इस प्रतिज्ञा के साथ (तत्त्व ज्ञान और साधुहृदय होने पर) तुम दोष से बिनिर्मुक्त हो, किंतु किसी और उपाय से नहीं।"

किसी बड़े जागीरदार का पुत्र यद्यपि विवश नहीं किया जाता, परंतु फिर भी वह प्रायः टेनिस, क्रिकेट, फुटबाल या शतरंज गंजीफा आदि खेलों में प्रवृत पाया जाता है, और इस खेलकूद के काम काज में लगने से वह अपने जन्मजात स्वत्व (अमीरी पद, धनिकता) से गिरकर मज़दूरों के झुंड में नहीं गिना जाता, इसी तरह जिन्होंने अपने सच्चे जन्मजात स्वत्व (ईश्वरीय स्वराज्य) को ले लिया है, वह यदि कार्यतः रेल, तार, मैशीन आदि काम काज के खेल में हिट (चोट पर) मारते हैं, और आकाश तक गेंद को उछालते हैं, तो उनकी राजकुमारता कौन अस्वीकार कर सकता है? और खेल में बाज़ी जीतना भी ईश्वर को जानने वाले का ही भाग है, क्योंकि वह निश्चिंत है। और जिसका चिंताओं के भार से प्राण निकल रहा हो वह लट्टू संसार के खेल को क्या ख़ाक़ खेलेगा? कर्म का निष्काम होना ज्ञानी

से अपने आप कर्तृत्व में आता है। और जहां स्वाभाविक कर्म निष्काम है, सफलता वहां दासी है। और यही ज्ञानी जो निष्काम कर्ममें अति उत्सुक हैं, यही हैं जिनको संन्यास का वह गाढ़ा रंग चढ़ता है कि भीतर से फूट कर बाहर निकल आता है। बाहर रँगे कपड़ों से भीतर नहीं जाता। जो लड़के खूब खेलते हैं, नींद भी उन्हीं की गाढ़ी होती है। इस छोटे से संसारमें निश्चिन्तता से खेलनेवाले निश्चिन्ततासे सोएँगे, नैष्कर्म्य होएँगे।

महात्मा ड्वसेन (Deussen) की राय तो है यों "कि अध्यात्मविद्या पहले इसके कि ब्राह्मण लोगों में उतरे, जो कर्मकांड में अतिशय प्रवृत रहते थे, राजा लोगों के भीतर प्रकट हुई और बाद में ब्राह्मणों ने इसे संभाला।" इस बात को मुख्यतः वेद के कई अवतरण देकर और विविध युक्तियों से वह अपनी ओर से प्रमाण के स्तंभ तक ले जाते अर्थात् पूर्ण सिद्ध कर देते हैं। अब यद्यपि राम उनसे सहमत नहीं है और उनके अवतरणों को पर्याप्त नहीं मानता और उनकी युक्तियों को सदोष ठानता है, तो भी इस बात से किसी को अस्वीकृति नहीं हो सकती कि राजा अजातशत्रु, प्रवाहन, जैबली, अश्वपति, कैकेय, प्रत्रवन, जनक, कृष्ण, राम, शिखध्वज, अलर्क आदि सैकड़ों राजे-महाराजे इस कोटि के विरक्त और साधुस्वभाव हुए हैं कि कोई संन्यासी उनकी क्या बराबरी करेगा? अशोक, रणजीतसिंह, बाबर, क्रामवील, एलिज़बेथ, वाशिंगटन, बरन् महान् चार्लस, जिसे नासमझ लोग नास्तिक कहते हैं, इत्यादि के भीतरी जीवन पर जब ध्यान से दृष्टि डाली जाती है, तो उनकी आंतरिक विरक्ति, साधुता, भीतर के त्याग-भाव को देखकर बुद्ध और ईसा स्मरण आते हैं।

इतिहास-विद्या की जो पुस्तक इस नियम को प्रकट नहीं करती कि जो जातियों के उत्थान और पतन, वंशोंके उदय और नाश, राजाओं की निष्कर्मता और तेजस्वितामें सच्चा कारण है, वह पुस्तक केवल काँटों की बाड़ है जिसके भीतर खेती नहीं, या सज-धज कर आई हुई बरात है जिसमें दुलहा नहीं है।

बात थी जो असल में वह नक़्ल में पाई नहीं।
इसलिये तसवीरे-जानाँ हमने खिचवाई नहीं॥
एक से जब दो हुए तो लुत्फ़े-यकताई नहीं।
इसलिये तसवीरे-जानाँ हमने खिचवाई नहीं॥
हम हैं मुश्ताक़े-सखुन और इसमें गोयाई नहीं।
इसलिये तसवीरे-जानाँ हमने खिचवाई नहीं॥

लोग कहते हैं, यद्यपि शेष विद्याओं और कलाओं में भारतवर्ष कभी सब देशों से आगे रह चुका है, किंतु भारतवर्ष में पाश्चात्य लोगों की भाँति सत्य-सत्य इतिहास-लेखन की शक्ति नहीं थी। होगा, परंतु यह जो जन्म मरण की तिथि, युद्ध का वाह्य चित्र, राज्यों का परिवर्तन, वंश-वृत्त, राजवंशों के उत्थान और पतन का समय, देश की मुख्य-मुख्य घटनाएँ, विद्रोह और विप्लव आदि का सविस्तर विवरण, इस से दफ़्तर के दफ़्तर काले कर दिए गए हैं, क्या ये इतिहास की ठीक २ विद्या में सम्मिलित हो सकते हैं? इतिहास की विद्या में तो नहीं, किंतु इतिहास की हड्डियों में निस्संदेह प्रविष्ट हैं। पाश्चात्य लोगों के लिपिबद्ध किए हुए इस प्रकार की घटनाएँ और वृत्तांत इतिहासकी सूखी हड्डियाँ कहला सकते हैं, और वह भी प्रायः विशृंखल और असंबद्ध।

सर आर्थर हेलिप्स (sir Arthur Helps) एक जगह लिखता है "इतिहास मेरे सामने मत पढ़ो, मैं जानता हूं कि सिवाय मिथ्या और झूठ होने के यह और कुछ नहीं होगा।"

"हेनरी थोरो" (Henry Thoroe) का कथन है "मैथालोजी (झूठी कहानियों की विद्या) में अधिक सचाई पाई जाती है, इतिहास की अपेक्षा।"

शोपेनहार (Schopenhauer) का कथन है—"समय समय के इतिहास के लिये दैनिक वा साप्ताहिक पत्र मिनट बरन् प्रायः सेकंड की सुई का काम देते हैं, जिस घड़ी के मिनट ही ठीक नहीं, घंटे कहाँ ठीक होंगे।"

इमर्सन (Emerson) का कहना है कि "वीर का हाल वह लिखे, जो उसी कोटि का वीर हो।" घायल की गति घायल जाने। और स्थान पर लिखा है "मिल्टन को वह समझे जो स्वयं मिल्टन हो।"

वली रा वली मे शिनासद।

अर्थात् वली, (तत्त्व वेता) को तत्त्व वेता ही ठीक पहचान सकता है, अन्य नहीं।

जो वर्णन उपस्थित किए जाते हैं, यदि ठीक हों तो वे प्रायः ऐसे ऊपरी तलपर के होते हैं जैसे कोई घड़ी की डायल, केस और सुइयों का तो हाल लिख दे किंतु उसकी भीतर की बनावट (कला) का कुछ पता न दे। इतने वर्णन से किसी की बिगड़ी घड़ी नहीं संवरती। केवल इतनी विद्या व्यावहारिक रीति पर कुछ लाभ न देगी, बरन् मस्तिष्क पर बोझ की भाँति" पढ़कर "नीम हकीम खतरए-जाँ, नीम मुल्ला खतरए-ईमाँ" वाली दशा लायगी। इतिहास-लेखक महाशय! यदि बतलाते हो, तो वह बात बतलाओ जो मेरे काम भी आए। अजनबी नाम और सन् याद करने से मेरा कुछ नहीं सुधरता, निष्प्राण हड्डियाँ कोई पाठ नहीं पढ़ातीं, ईश्वर ज्ञान से रहित इतिहास की विद्या अंधकार को नहीं हटाती। मनुष्य का लिखा हुआ उपन्यास पढ़ने को बैठें, तो छोड़ने को जी

नहीं चाहता। क्या ईश्वर का नाटक (संसार) एक साधारण उपन्यास के समान भी आनंद नहीं रखता? निस्संदेह रखता है और उस आनंद और मनोरंजकता को दिखाना सच्चा इतिहास लिखने वाले का काम है।

ऐसे इतिहास का लेखक वह हो सकता है जो संसार के रचयिता को सचमुच पहचानता हो, प्रकृति के नियम (दैवी-विधान) को पूर्ण रूप से जानता हो। प्रकृति के आध्यात्मिक नियम को कौन जान सकता है? जो अपने ही नित्य-प्रति के जीवन के ज्वारभाटे (उतार चढ़ाओ) पर ध्यान करता-करता उस नियम को जान जाय जिससे दुःख और सुख, सुकर्म और अकर्म आदि संबंधित हैं। संसार के रचयिता को कौन पहचान सकता है? जो अपने ही सच्चे स्वरूप को सचमुच पहचान जाय।

من عرف نفسه فقد عرف ربه

मन अर्फा नफसहू फक़द अर्फा रब्बहू।

अर्थः—जिसने अपने स्वरूप को पहचाना, उसी ने ईश्वर को पहचाना है।

जिसे अपनी भी खबर नहीं, वह अन्य संसारवालों, अन्य पदवालों और अन्य देश और जातिवालोंकी खबर क्या खाक देगा? किसी किताब में आनंद और मनोरंजकता कब होती है? जब उसमें हम अपने मन की सुनें और अपने ही किसी गुप्त अनुभव का पता पाएँ। और विश्व का इतिहास यदि सच्चा-सच्चा लिखा जाय, तो क्या है? तुम्हारे ही किसी न किसी समय के अनुभवों की लड़ी है।

अपने कारनामे किसको प्यारे नहीं लगते? विश्वके इतिहास में घटित भूलें भी आनंद से रहित नहीं। आज जवाब-दही से पीछा छुड़ाकर तुम उनसे पाठ पढ़ सकते हो। यह न

कहना कि वाशिंगटन, महान चार्लस (charles the great) कैसर, रूमा, मिकाडू आदि के अनुभव भला मेरे साथ क्या संबंध रख सकते हैं? छिपकर रोनेवाली भारतवर्ष की स्त्री की आंख से टपकता हुआ आंसू का मोती, जो किसी ने भी गिरते नहीं देखा, उसी नियम का द्योतक है जिसका कि उल्का तारा (meteor) है, जो आकाश में टूटकर नीचे गिरता हुआ सब को दृष्टिगोचर होता है। राजाओं के किलाओं में और अँधी बुढ़िया की झोंपड़ी में मन की इच्छाएँ तो एक जैसी हैं, और भीतर दुःख-सुख भी एक जैसे, और सफलता का नियम भी एक ही है। इस एक नियम को जान लिया, तो तुम मानों संसार के इतिहास को जान गए। इस (Law, नियम) को व्यावहारिक रीति से सब धर्मों ने जाना, किंतु ज्ञान की नीव केवल वेदांत ने स्थिर की।

ज्ञान के भंडार में कोई नवीन समाचार इसके लिये नहीं। छांदोग्य उपनिषद में पूर्व महापुरुषों ने इस ज्ञान को पाकर यों कहा—"आज से कोई हमको ऐसी बात नहीं बता सकता जो हम पहले से न जानते हों। ऐसी खबर कोई नहीं ला सकता, जो हमको पहले से मालूम न हो, ऐसी वस्तु कोई नहीं दिखला सकता जो हम ने न देखी हो।" क्योंकि इस ज्ञान के पाने से सब अनदेखा देखा गया, सब बेसुना सुना गया, सब न जाना जाना गया।

ऐसे ज्ञानी के समान दूसरा है ही नहीं, तो उसके आगे ठहर कौन सके? स्यापा तो उनके लिये है जो इस ज्ञान से अपरिचित हैं और इसी कारण पारे की तरह चँचल हैं। ऐसे लोग केवल व्याकरण के सहारे या बुद्धि के सहारे वेदांत पढ़कर इस पाप-सागर और शोकसमुद्र को पार नहीं कर सकते। "शोक को आत्मविद् तैर जाता है"। यह वेद की

बतलाई हुई कसौटी उनको शुद्ध स्वर्ण नहीं सिद्ध करती। अतः पूर्ण शुद्धता के लिये और पूर्ण रीति से मैल तथा मिलावट उतारने के लिये धन्धों की अग्नि में पड़ना और कर्म के तेज़ाब में से गुज़रना अनुचित नहीं हैः—

क़द्रे-आफ़ियत कसे दानद कि ब मुसीबते-गिरफ़्तार आयद।

अर्थः—आराम (सुख) की क़द्र वही जान सकता है जो मुसीबत (दुःख) में पड़ चुका हो।

जिस से वेद निकले हैं, उसी से संसार का प्रकाश है। अतः वेद (श्रुति) की शिक्षा तो कुछ और हो, और जीवन के कठोर अनुभव कुछ और पाठ पढ़ावें, यह कभी संभव नहीं। दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। जो कुछ विद्या और बुद्धि के रूप में श्रुति (वेदांत) का उपदेश है, वही व्यावहारिक रूप से जीवन की पाठशाला में पाठ मिलता है।

क्या तुम्हारा विश्वास वेदांत-तत्त्व पर इतना ही कच्चा है कि जीवन की घटनाओं से उसको हानि पहुंचाने की आशंका हो गई? जरा सँभल कर देखो, कोई शक्ति वेदांत की विरोधिनी नहीं है, कोई धर्म वेदांत का शत्रु नहीं है, कोई तत्वज्ञान या विज्ञान इसका शत्रु नहीं है, सब सेवक हैं, सेवक। हां कुछ तो समझदार सेवक हैं, और कुछ ना समझ।

यदि सर्व-साधारण को पहले की भाँति वह वैकुंठ और स्वर्ग के प्रलोभन आज खींचते ही नहीं, और न स्वर्गलोक की प्राप्ति के उपयुक्त कर्म, बरन् जीते जी भूख से बचने की कामना अधिक अधिकार किए हुए है, अथवा संसार के सुख अधिक चित्त को खींच रहे हैं, अथवा और सब प्रकार से भी उनके संकल्प और आवश्यकताएँ बदल रही हैं, तो कहिए क्या यह नाम-रूप के क्षेत्र की व्यक्त वस्तुएँ एकरस भी रह

सकती थीं? इनको स्थिर और सदैव स्थिर रखने में प्रयत्न करना तो अस्तित्वहीन को व्यक्त करने में मन लगाना है, मिथ्या नाम-रूप को आत्मा की उपमा देने का परिश्रम है।

कोशिशे-बेफ़ायदा अस्त व सुरमा बर अब्रूए-कोर।
अर्थः-व्यर्थ परिश्रम है और अन्धे के नेत्र पर सुरमा लगाना है।

हिन्दू शास्त्र की सच्ची शिक्षा कर्मकाण्ड के रूप को अविनाशी बनाने में नहीं है, बरन् अविनाशी आत्मा को प्रत्येक रूप में और प्रत्येक कर्म में, प्रत्येक ऋतु और युग में अनुभव में लाना है। इस लिए आज रेलों, तारों, जहाज़ों, कलों से द्वेष छोड़ो। यदि रात है, तो रात के साथ मत लड़ो, बरन् उसी रात में दीपक जला दो.अमावस्या को दीपावली की रात्रि कर दो, संसार दीप्तिमान करदो। जब दिन आया, तो रात भी आएगी। और यह तो कहो, रात किस बात में दिन से बुरी है? दिन में यदि एक प्रकार की उत्तमता है, तो रात में दूसरे प्रकार का सुख है। पर इससे लाभ उठानेवाला चाहिए। कलियुग यदि बुरा है. तो केवल उसके लिये, कि जो उसको ब्रह्म देखने का द्वार नहीं बनाता।

यह आत्मा को परिच्छिन्न बनाना या नाम-रूप के बंधन में लाना नहीं है, वरन् नाम रूपी परिच्छिन्नता को उड़ाना है। स्वप्न में भयानक सिंह आदि का सामना हो, तो जागृति आ जाती है। स्वप्न ही का सिंह स्वप्न की समस्त वस्तुओं को खा जाता है, लोहे को लोहा काटता है। पेट-पालू जब एक बेर भी अपना शरीर समस्त भारतवर्ष देखेगा, तो छोटे से शरीर की समाधि में उसका जी न लगेगा, वृत्त विस्तृत हो जायगा और धीरे-धीरे समधरातल रेखा, विस्तीर्ण चक्र बन जायगी; भूमिका चढ़ जायगी।

अच्छा जी! कुछ भी कहो, राम तो हर रंग में रमता

राम है। हर देह में प्राण है। हर प्राण की जान है। सब में सब कुछ है; पर इस समय लेखनी बनकर लिख रहा है, सूरज बनकर चमक रहा है, गोली गंगी (जिसको लोग श्रीगंगाजी कहते हैं) बनकर गा रहा है, पर्वत बनकर हरे दोशाले ओढे कुंभकर्ण की तरह पैर पसारे सुषुप्ति में लेट रहा है। परंतु अपना एक रूप उसे अधिक भा रहा है। मैं पवन हूँ, मुझ बिन प्रत्येक वस्तु निश्चेष्ट, गतिहीन व निर्जीव है।

"Everything is helpless beside me, I the only motive power, not a leaf can fall without my power.

मेरी सत्ता पाए बिना पत्ता नहीं हिल सकता। मुझ बिन सब कुछ दीमक की तरह सो जाता है, जली हुई रस्सी की तरह ढह जाता है। काम बिगड़ने लगा? मैं किसको लांछन दूँ, मेरे सिवाय और कुछ हो भी?

ऐ मौत! बेशक उड़ा दे इस एक जिस्म (शरीर) को। मेरे और शरीर ही मुझे कुछ कम नहीं। केवल चाँद की किरणें चाँदी की तारें पहन कर चैन से काट सकता हूँ, पहाड़ी नदी नालों के भेस में गीत गाता फिरूँगा, सागर-तरंगों के पहरावेमें लहराता फिरूंगा। मैं ही मन्द वेगी पवन हूँ और प्रभात काल की मस्त चाल वायु (समीर) हूँ, मेरी यह सैलानी मूर्ति सदैव विचरती रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा, मुरझाते पूदों को ताज़ा किया, पुष्पों को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाज़ों को खट खटाया, सोतों को जगाया। किसीका आँसू पोंछा, किसी का घूँघट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़, वह गया, वह गया, न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!